विषय सूची

चित्रसूची

अध्याय १

इस्लाम-धर्म का अभ्युदय : अरबों का आक्रमण

इस्लाम-धर्म का अभ्युदय संसार के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। यह याद रखने की बात है कि जिस समय पुष्यभूति-वंश के सम्राट हर्ष भारत में बौद्ध-धर्म की पताका फहराने के प्रयत्न में लगे थे, उसी समय एशिया के दक्षिण-पश्चिमी कोने में स्थित अरब नाम के देश में मुहम्मद नाम के एक अरबी धर्म-गुरु अपने नये क्रान्तिकारी धर्म इस्लाम के प्रचार में जी जान से लगे हुए थे।

हजरत मुहम्मद साहब

इस्लाम-धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब का जन्म लगभग सन् ५७० ई० में अरब देश के मक्का नगर में हुआ था। जिस समय मुहम्मद साहब का जन्म हुआ, अरब की सामाजिक और राजनैतिक अवस्था बड़ी गिरी हुई थी। अरब जाति उस समय कई फिरकों में बटी हुई थी, जो हमेशा आपस में लड़ते-भिड़ते रहते थे। उनमें एकता का बिल्कुल अभाव था,

धर्म भी अन्ध-विश्वासों से पूर्ण था और वे अनेक प्रकार के देवताओं की मूर्ति बनाकर पूजा करते थे।

मुहम्मद साहब इन्हीं लोगों के बीच पैदा हुए थे। किन्तु इन की प्रतिभा अलौकिक थी। बचपन से ही वे बहुत चिन्तनशील थे और सत्य की खोज में परेशान रहते थे। प्रारम्भ में कई साल तक वे व्यापारी का काम करते रहे, लेकिन सन् ६२० में उनके हृदय में अन्त:प्रेरणा हुई कि उन्हें लोगों में सही धर्म इस्लाम का प्रचार करना चाहिए। अतः तब से ही वे इस्लाम-धर्म के प्रचार में जुट गये।

हजरत मुहम्मद साहब के उपदेशों का मक्का के लोगों ने बहुत विरोध किया। विरोधियों ने उन्हें मार डालने का भी षड्यंत्र रचा। इसीलिए सन् ६२२ ई० में मुहम्मद साहब अपने थोड़े से साथियों के साथ मक्का छोडकर मदीना भाग गये। मुस्लिम संवत् जिसे हिजरी सन् कहते है, मुहम्मद साहब के मक्का से भागने के समय (जुलाई सन् ६२२) से ही आरम्भ होता है। इसके बाद लगभग १० वर्षों तक मुहम्मद साहब मदीना मे रहकर धर्मके प्रचार तथा अरब जाति को संगठित करने में लगे रहे। उन्होंने सेना बनाकर विरोधियों का दमन किया और अन्त में मक्का पर भी अपना अधिकार जमा लिया। सन् ६३२ ई० में जिस समय हजरत मुहम्मद साहब की मृत्यु हुई, वे लगभग सारे अरब देश के प्रभु बन चुके थे। इस प्रकार मुहम्मद साहब को धर्म-प्रचारक ही नहीं, समाज-सुधारक और राष्ट्र-निर्माता भी कहा जाता है। निःसन्देह, अनेक फिरकों

में बटे हुए अरबों को उन्होंने एकता के सूत्र में बांधा और उन्हें एक नये धर्म के जोश से भर दिया।

इस्लाम-धर्म के सिद्धान्त

इस्लाम-धर्म के सिद्धान्त बहुत सीधे सादे हैं। इसी कारण धर्म के जंजाल में फंसे लोगों को वे बहुत पसन्द आये। मुहम्मद साहब ने अनेकानेक देवताओं, अंध विश्वासों आदि का खंडन किया और केवल एक ही ईश्वर—अल्ला—पर विश्वास करने का आदेश दिया। मुहम्मद साहब ने बतलाया कि एक परमात्मा के सिवाय कोई दूसरा नहीं है और वही समस्त संसार का बनानेवाला, रक्षक तथा विनाशक है। इसलिए उसके सिवा मनुष्य को दूसरे की भक्ति नहीं करनी चाहिए। इस्लाम का सिद्धान्त है कि खुदा एक ही है और हजरत मुहम्मद साहब आखिरी रसूल हुए हैं। इस्लाम की सारी शिक्षाएं 'कुरान' नाम की पुस्तक में पायी जाती हैं।

इस्लाम-धर्म के मानने वाले मुस्लिम या मुसलमान नाम से पुकारे गये। इस्लाम-धर्म में जिस कर्मकाण्ड की व्यवस्था है, वह भी बहुत सीधी और आसान है। प्रत्येक मुसलमान के लिए निम्न लिखित कर्म आवश्यक है—दान देना, प्रत्येक दिन पांच बार नमाज पढना, रमजान के महीने में रोजा रखना और हज अर्थात् मक्का की तीर्थ-यात्रा करना। मुहम्मद साहब ने दया और दान पर काफी जोर दिया है। उन की शिक्षा थी कि इस्लाम के हर-एक अनुयायी को गरीबों व अनाथों आदि की सेवा करनी चाहिए और गुलामों के साथ दया का वर्ताव

६४४में अरबों ने सिंध के राजा को हराकर उससे बिलोचिस्तान का मकरान प्रान्त छीन लिया। मकरान के हाथ में आ जाने पर अब अरब वाले पूरे सिंध को ही हड़प लेने की इच्छा करने लगे।

मुहम्मद-बिन-कासिम का सिंध पर आक्रमण

जिस समय अरबों ने सिंध पर आक्रमण किया, उस समय वहां ब्राह्मण राजा दाहिर राज्य करता था। इस समय पश्चिमी तट को जाने वाले अरब जहाजों को सिंध डेल्टा के लुटेरे अक्सर लूट लिया करते थे। इसलिये इन समुद्री डाकुओं को नष्ट करने के लिए भी खलीफा उतावले हो रहे थे। संयोगवश सिंहल से आने वाले अरब जहाजों को देवल बन्दर के डाकुओं ने लूट लिया। इस पर खलीफा वलीद प्रथम के अधीन इराक के शासक हज्जाज-बिन-यूसुफ ने अरब जहाजों की जो क्षति हुई थी, उसे पूरा करने के लिए दाहिर से कहा। लेकिन दाहिर ने इस मांग पर कोई ध्यान न दिया। अतः हज्जाज-बिन-युसुफ ने सिंध पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

हज्जाज ने इस आक्रमण का नेता अपने भतीजे और दामाद मुहम्मद-बिन-कासिम को नियुक्त किया। मुहम्मद-बिन-कासिम एक नौजवान सेनापति था। सन् ७१०-११ ई० में उस की सेना ने देवल पर अधिकार कर लिया। कहते हैं कि अरबों के सिंध में घुसने पर ब्राह्मणों के विरोधी बौद्ध-श्रमण और कितने ही असंतुष्ट सरदारगण अपने राजा और देश का साथ छोड़ कर अरब आक्रमणकारियों से जा मिले थे। अरबों को इससे बड़ी सहायता मिली और उन्होंने आसानी से सिन्धु

नदी के पश्चिमी भाग पर अधिकार कर लिया। दाहिर ने मुहम्मद-बिन-कासिम को सिन्धु नदी पार करने से रोकना चाहा; लेकिन कुछ देश-द्रोहियों की मदद से अरब पार उतर ही गये। तब दाहिर ने सेना लेकर अरबों का वीरता से मुकाबला किया (सन् ७१२ ई०)। युद्ध में अरब विजयी हुए और दाहिर लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।

दाहिर की मृत्यु के बाद अरबों को पूरे सिंध पर अधिकार करने में कोई विशेष कठिनाई न रह गयी। ६ महीने के अन्दर मुहम्मद-बिन-कासिम ने सम्पूर्ण सिंध के प्रदेश और मुल्तान पर अधिकार कर लिया।

अरब शासन

दाहिर की हार और सिंध के पतन के बड़े कारण थे। बौद्ध-श्रमण और बौद्ध-जनता (जाट लोग) ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरोधी थे। सिंध का व्यापारी-वर्ग अपने स्वार्थ के लिए अरबों से मिल गया था। अनेक हिन्दू सरदारों ने भी विश्वासघात करके अपने देश और राजा का साथ ही न छोड़ा, बल्कि आक्रमणकारियों का साथ भी दिया। दाहिर के शासन से असन्तुष्ट प्रजा ने भी अपने राजा का साथ न दिया। इसलिए यह सकते हैं कि सिंध का पतन अपने ही भेद-भाव, मन-मुटाव और सुशासन की कमी तथा राष्ट्रीय भावना के अभाव के कारण हुआ।

अरब विजेताओं ने शुरू में हिन्दू-जनता पर ज़ोर-
की नीति चलायी, लेकिन सुयोग्य नेता मुहम्मद-बिन-

को यह नीति ठीक न जंची। मुहम्मद ने इस बात को समझा कि पराजित हिन्दू व बौद्ध जनता तथा विजयी अरबों में मेल-जोल रखना अरब-शासन के लिए बहुत आवश्यक है। अतः अरब शासकों ने जनता को खुश करने के लिए उदारता और सहिष्णुता की नीति अपनायी।

मुहम्मद-बिन-कासिम ने शासन की पुरानी व्यवस्था कायम रखी। हिन्दू-जनता को धर्म बदलने के लिए भी मजबूर न किया। जजिया लेकर उन्हें अपने धर्म के पालन की इजाजत दे दी गई। ब्राह्मणों और पुरोहितोंको देव-मन्दिरों में पूजा-पाठ करने दिया गया। ब्राह्मणों को सरकारी पदों पर भी रखा गया। मालगुजारी की वसूली का सारा काम ब्राह्मणों को ही सौंपा गया। पुराने सिंध के सरदारों से भी राज्य चलाने में सहायता ली गई।

मुहम्मद-बिन-कासिम द्वारा स्थापित सिंध का अरब-राज्य काफी समय तक बना रहा। लेकिन खलीफाओं की शक्ति घटने पर आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में सिंध के अरब शासक व सरदार स्वतंत्र हो गये।

मुहम्मद-बिन-कासिम के बाद भी अरबों ने सिंध से आगे बढ़ने का कई बार प्रयत्न किया, लेकिन वे सफल न हो सके। दक्षिण में उन्हें चालुक्यों ने रोका, पूरब में शक्तिशाली गुर्जर-प्रतिहार राजाओं ने उन्हें बढ़ने न दिया और उत्तर में काश्मीर के शक्तिशाली कारकोट-वंश के राजाओं ने उन्हें कदम न उठाने

सांस्कृतिक सम्बन्ध

सिंध-विजय के बाद यद्यपि अरब भारत में आगे घुसकर राजनैतिक सत्ता कायम न कर सके, तथापि भारत के साथ निकट सम्बन्ध स्थापित हो जाने से सांस्कृतिक दृष्टि से उन्होंने खूब लाभ उठाया। भारत की उन्नत संस्कृति और ज्ञान से अरबों ने बहुत कुछ सीखा। भारत से अरबों ने साहित्य, ज्योतिष, गणित, वैद्यक, अध्यात्म-विद्या आदि अनेक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। अब्बासी खलीफाओं के समय में अनेक अरबी युवक भारत के विद्यापीठों में शिक्षा पाने के लिए यहाँ आते रहे।

खलीफा हारून-उल रशीद (सन् ७८६–८०९) भारतीय विद्वानों का बहुत मान करता था। उसने अनेक भारतीय विद्वानों को अपनी राजधानी बगदाद में बुलाया था। भारत के पंडितों की सहायता से खलीफाओं ने बहुत सी भारतीय पुस्तकों का अरबी में अनुवाद भी कराया। अरबों के द्वारा भारत की विद्याएं यूरोप भी पहुँची। इस प्रकार अरबों के प्रयत्न से भारतीय-संस्कृति या यश दूर-दूर तक फैल गया। संस्कृति के अलावा अरबों के सम्पर्क से भारतीय व्यापार की भी बढ़ती हुई और सिंध का प्रदेश व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र बन गया।

कन्नौज का सम्राट यशोवर्मा

सिंध में जिस समय अरब राज्य स्थापित हुआ, उस समय उत्तरी भारत में कन्नौज का पुष्यभूति-साम्राज्य भी हर्ष की मृत्यु के बाद समाप्त हो चुका था। हर्ष का कोई उत्तराधिकारी न था, इसलिए उसके मरते ही अर्जुन नाम के उसी के एक मन्त्री

ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उसके समय में चीन से एक बौद्ध 'दूत-मंडल' भारत आया। अर्जुन ने इस दूत-मंडल पर आक्रमण करके उनमें से कुछ को मार डाला और कुछ को कैद कर लिया। दूत-मंडल का नेता भाग कर नेपाल चला गया। इस पर नेपाल और तिब्बत ने मिल कर अर्जुन को दंड देने के लिए सेनाएं भेजी। युद्ध में अर्जुन हार गया और कैदी बनाकर चीन भेज दिया गया।

इस प्रकार उत्तरी-भारत की राजनैतिक प्रभुता हर्ष की मृत्यु के बाद फिर घट चली थी। ८ वीं शताब्दी में कन्नौज में यशोवर्मा (लगभग ७२५–७४१ ई०) नाम का राजा राज्य करता था। इस राजा के कुल और वंश का कुछ पता नहीं चलता। इसने पूरब में मगध के गुप्तराजा को परास्त कर मार डाला और गौड़ तक अपना राज्य फैला लिया। हिमालय के पहाड़ी प्रदेश भी इसके राज्य में शामिल थे। उसने चीन के सम्राट के पास अपना राजदूत भी भेजा था। किन्तु इस शक्तिशाली राजा को अन्त में काश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त कर मार डाला।

यशोवर्मा संस्कृत-साहित्य का बहुत बड़ा प्रेमी और संरक्षक था। प्रसिद्ध उत्तर-रामचरित नाटक का रचयिता महान-कवि भवभूति उसी की राजसभा में रहता था।

काश्मीर का महान सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़

सिंध के पतन के समय काश्मीर में कारकोट-वंशी राजा राज्य करते थे। इस वंश का सब से प्रसिद्ध राजा ललितादित्य-

मुक्तापीड हुआ। इसने लगभग सन् ७२४ से ७६० ई० तक राज्य किया। इसने तिब्बतियों को परास्त किया, कन्नौज के राजा यशोवर्मा को हराया, पंजाब के एक हिस्से पर प्रभुत्व स्थापित किया और सिंध के अरबों को पछाड़कर उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। चीन के साथ उसका मित्रता का संबंध था और उसका दूत चीनी सम्राट् के पास रहता था।

ललितादित्य वीर ही नहीं, एक धर्मात्मा राजा भी था। उसने अनेक देव-मन्दिरों का निर्माण कराया था। उसका बनवाया हुआ 'मार्त्तण्ड-मन्दिर' बहुत प्रसिद्ध है।

ललितादित्य के बाद उसका पौत्र जयपीड विनयादित्य (लगभग सन् ७७९–८१० ई०) भी एक महान विजेता हुआ। लेकिन उसके बाद कारकोट-वंश का पतन हो गया और उस की जगह उत्पल-वंश ने ले ली।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१–इस्लाम धर्म का अभ्युदय कब हुआ? उसका प्रवर्तक कौन था?
२–अरबों ने सिंध पर कब और क्यों आक्रमण किया?
३–सिंध का पतन कैसे हुआ?
४–अरब शासकों ने सिंध में किस नीति से काम किया?
५–अरब और भारत के सम्पर्क का क्या परिणाम हुआ?
६–यशोवर्मा और ललितादित्य मुक्तापीड के बारे में आप क्या जानते हैं?

राजपूतों की उत्पत्ति

राजपूतों को पश्चिमी विद्वान् अधिकतया विदेशी जातियों और भारत के मूल निवासियों की सन्तान मानते हैं। लेकिन पश्चिमी-विद्वानों ने अपने मत की पुष्टि में जो प्रमाण दिये हैं, वे संतोषजनक नहीं हैं। अतः बहुत से विद्वान यह मानते हैं कि राजपूत साधारणतया प्राचीन क्षत्रियों के ही वंशज हैं। स्वयं राजपूत अपना मूल महाकाव्यकाल और पौराणिक काल के महापुरुषों तथा ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र और अग्नि आदि देवताओं में मानते हैं।

राजपूत और क्षात्र-धर्म

प्राचीन काल के क्षत्रियों की तरह राजपूत लोग कट्टर रूप से क्षात्र-धर्म के मानने वाले थे। अपने क्षात्र-धर्म को निभाने में उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं रखी। राजपूत अपनी वीरता और युद्ध-प्रियता के लिए जगत प्रसिद्ध हैं। युद्ध से भागना और पीठ दिखाना वे जानते ही न थे। वे प्राण दे सकते थे, लेकिन अपमान सहन नहीं कर सकते थे। उनके स्त्री और बच्चे भी उन्हीं की तरह स्वाभिमानी थे। पुरुषों की हार होने पर स्त्रियां अपने बच्चों के साथ चिता में जलकर प्राण दे देती थीं। राजपूत महिलाओं का यह "जौहर" संसार के इतिहास में बेजोड़ और बेमिसाल चीज है। राजपूत जैसे वीर और स्वाभिमानी थे वैसे ही उदार और दयालु भी थे। शरण में आये हुए शत्रु को भी आश्रय देने से वे न चूकते थे। धर्म, साहित्य,

कला और संस्कृति के ये अनन्य उपासक और सरक्षक रहे हैं। तुर्कों आदि का आक्रमण होने पर आपसी फूट के कारण उन्हें पराजय तो सहनी पड़ी. लेकिन अपने गौरव पर उन्होंने आंच नहीं आने दी।

काश्मीर

उत्तरी भारत में गुर्जर-प्रतिहारों के अभ्युदय के पहले दो सौ वर्षों तक साम्राज्य स्थापना के लिए संघर्ष होता चला आ रहा था। इस काल में उत्तर में काश्मीर, और पूरब में बंगाल के पाल राजा शक्तिशाली हो गये थे। हर्ष की प्रतिष्ठित राजनगरी कन्नौज या महोदय पर सब की आंखें लगी हुई थीं। कन्नौज पर अधिकार करने का अर्थ उस समय उत्तरी-भारत पर प्रभुता पाना था।

पिछले अध्याय में हम ने बतलाया था कि काश्मीर क कारकोट वंश के राजा ललितादित्य ने कन्नौज के राजा यशोवर्मा को पराजित किया था। उसके पौत्र जयपीड़ ने भी कन्नौज के राजा को हराया था। किन्तु उसके बाद ८५५ ई०में कारकोट-वंश समाप्त हो गया और उसकी जगह उत्पल-वंश राज्य करने लगा।

उत्पल-वंश का पहला राजा अवन्ति वर्मा (८५५–८३ ई०) हुआ। यह राजा अपनी न्यायप्रियता और सुशासन के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इसके समय में काश्मीर धन-धान्य से पूर्ण था। खेती की उन्नति के लिए भी उसने बहुत प्रयत्न किया। इस के सुयोग्य मंत्री सुय्य ने नदियों में बांध बंधवाये और खेती

के लिए अनेक नहर निकलवायी थी। इन नहरो के कारण बहुत सी बंजर जमीन भी उपजाऊ हो गयी और देश अन्न से भर गया। अत. जनता ने खुश होकर सुय्य को 'अन्न-पति' की उपाधि दी।

अवन्तिवर्मा का लडका शंकरवर्मा हुआ। इसने लगभग ८८३ मे ९०२ ई० तक राज्य किया। वह भी बहुत बडा विजेता था। उसने उत्तर मे उदभाण्डपुर और काबुल के ब्राह्मण-शाही राजा को युद्ध में हराया और कन्नौज के राजा मिहिर भोज से भी युद्ध किया। किन्तु उसके बाद उत्पल-वंश मे कोई शक्तिशाली राजा न हुआ। ९४० ई० के लगभग उत्पल-वंश का राज्य समाप्त हो गया। उसके बाद के वंश विशेष महत्वपूर्ण न हुए। अत काश्मीर की शक्ति धीरे-धीरे शिथिल पडती गई और अन्त मे चौदहवी शताब्दी मे उस पर मुस्लिम विजेताओ का अधिकार हो गया।

काबुल और ओहिन्द का ब्राह्मण-शाही राज्य

सातवी और आठवी शताब्दीमें अरबो ने काबुल जीतने के अनेक प्रयत्न किये, लेकिन उनके सब प्रयत्न विफल हुए। अरबो के आक्रमणों से परेशान होकर काबुल के बौद्ध हिन्दू–राजाओंने सिन्धु नदी के तट पर उदभाण्डपुर मे अपनी नयी राजधानी बसाई। यह उदभाण्डपुर आजकल ओहिन्द कहलाता है। ९ वी शताब्दी के अन्तिम भागमे आखिरी बौद्ध-क्षत्रिय राजा के ब्राह्मण मंत्री लल्लीय ने काबुल और ओहिन्द पर अधिकार कर लिया। उसका वंश ब्राह्मण-शाही वंश के नाम से प्रसिद्ध है।

इस वंश के राजाओं का गजनी के तुर्कों से भी संघर्ष हुआ जिसका आगे वर्णन किया जायगा।

प्रथम कन्नौज साम्राज्य का ह्रास

हर्ष के बाद ८वीं शताब्दी में कन्नौज में यशोवर्मा ने अपना राज्य स्थापित किया था। किन्तु काश्मीर के राजा ललितादित्य ने यशोवर्मा को परास्त कर उसकी शक्ति खत्म कर दी थी। यशोवर्मा के बाद कन्नौज में वे राजा राज्य करने लगे जिनके नाम के अन्त में 'आयुध' शब्द आता था। ललितादित्य के पौत्र जयपीड़ ने भी कन्नौज पर आक्रमण किया और वहां के 'आयुध' नाम वाले एक राजा को हराया। ये 'आयुध' नामी राजा शक्तिहीन थे। अतः हर्ष के बाद का प्रथम कन्नौज-साम्राज्य भी अधिक समय तक न चला। इस साम्राज्य के पतन से बंगाल के पालों गुर्जरों, प्रतिहारों और दक्षिण के राष्ट्रकूटों ने कन्नौज पर अपना-अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। इसमें गुर्जर-प्रतिहारोंकी अन्त में विजय हुई। इस प्रकार हर्ष की मृत्यु के लगभग दो-सौ वर्ष बाद कन्नौज में पुनः एक शक्तिशाली प्रतिहार-साम्राज्य कायम हुआ।

प्रादेशिक राज्यों का अभ्युदय

कन्नौज के प्रथम-साम्राज्य के पतन होने पर पाल गंग, राष्ट्रकूट और प्रतिहारों के शक्तिशाली राज्यों का भारत में उदय हुआ था। इन का नीचे वर्णन किया जायगा।

पाल-वंश

८वीं शताब्दी में कन्नौजके राजा यशोवर्मा और काश्मीर के

मारकोट राजा ललितादित्य और जयपीड विनयादित्य के आक्रमणो के कारण बगाल और मगध मे अराजकता फैल गई थी। इस अराजकता मे वहा के लोगो का जीवन विपद्ग्रस्त हो गया था। अत ८वी शताब्दी के मध्यभाग म (७५० ई०के लगभग) बगाल के लोगो ने गोपाल नाम के एक व्यक्ति को अपना राजा बनाया। इसने बगाल से दक्षिणी विहार या मगध तक अपना राज्य फैलाया और सुव्यवस्था तथा सुशासन स्थापित किया। इसने लगभग ७७० ई० तक राज्य किया। वह अपन को सूर्यवंशी मानता था।

पाल राजाओ के समय म बगाल ने खूब उन्नति की। गोपाल का लडका धर्मपाल बडा यशस्वी और विजेता हुआ। इसने लगभग ३२ वर्ष तक राज्य किया।

धर्मपाल, नागभट्ट द्वितीय और गोविन्द तृतीय

धर्मपाल की महत्वाकाक्षा उत्तरी भारत में पुन एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करने की थी। कहते है कि इसने उत्तर में हिमालय और दक्षिण म विन्ध्याचल तक पाल साम्राज्य का फैला दिया था। कनौज के राजा इन्द्रायुध या इन्द्रराज को गद्दी से उतार कर उसने अपने पक्ष के एक व्यक्ति चक्रायुध को कनौज के सिहासन पर बैठाया।

किन्तु उसकी उत्तरी भारत की विजय स्थायी न हो सकी। भिनमाल के गुजर-प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीयने धर्मपाल और चक्रायुध को हराकर कनौज पर अपना अधिकार कर लिया। पर इसीसमय दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीयने

भी उत्तरी–भारत पर आक्रमण किया और नागभट्ट को कन्नौज से भगा दिया।

लेकिन राष्ट्रकूट राजा अधिक दिनो तक उत्तरी–भारत में न टिक सके और अन्तमें नागभट्ट द्वितीय के पौत्र मिहिर भोज ने ८३६ ई० के लगभग कन्नौज पर पुनः अधिकार कर लिया। इस प्रकार ९वी शताब्दीके मध्यसे पहले ही कन्नौज मे पुनः गुर्जर-प्रतिहार राजाओ का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

धर्मपाल और उसके उत्तराधिकारी

धर्मपाल अपने पिता की तरह बौद्ध-धर्म का मानने वाला था। भागलपुर के पास उसका बनवाया हुआ विक्रमशिला का विहार नालन्दा की तरह ही प्रसिद्ध है।

धर्मपाल का बेटा देवपाल भी बहुत प्रतापी और यशस्वी हुआ। उसने उड़ीसा और आसामको जीता और राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष तथा सभवतया गुर्जर राजा प्रतिहार भोज से भी युद्ध किये और विजयी हुआ। किन्तु उसके राज्य-काल के अन्तिम दिनो में प्रतिहार भोज ने उत्तरी भारत से पालों की सत्ता को बिलकुल खतम करके कन्नौज पर अपना अधिकार कर लिया।

देवपाल कला और साहित्यका भी प्रेमी था। उस के समय में बंगाल उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था। सभवतया बौद्ध-गया का बुद्धदेव का मन्दिर उसी ने बनवाया था।

देवपाल के उत्तराधिकारी कमजोर निकले। अत उसके बाद पाल वंश का पुराना गौरव और शक्ति क्षीण हो चली।
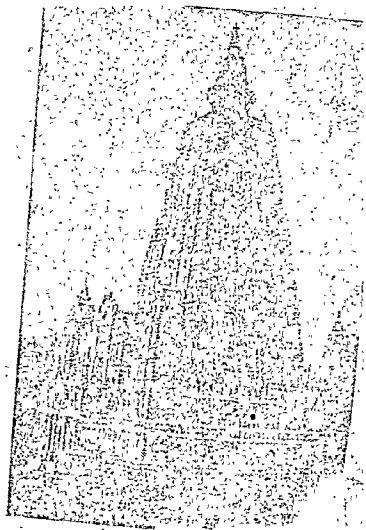
बौद्ध गया का मन्दिर

कलिंग के गंग

८ वी शताब्दी मे कलिंग मे गग राजाओ का राज्य स्थापित हुआ। ये गग राजा वहा पर १५वी शताब्दी तक राज्य करते रहे। गग राजा गगवाडी (पूर्वी मैसूर) के गगो के ही वशज थे। ११ वी शताब्दी मे गग राजा राजराज ने एक
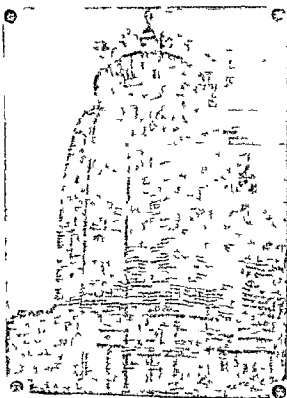
भुवनेश्वर का लिंगराज-मन्दिर

चोल राजकुमारी से विवाह किया। इस विवाह से गंगों की शक्ति को बल मिला। गंग-पिता और चोल-माता से पैदा होने के कारण राजराज का लड़का अनंतवर्मन चोडगंग कहलाया। उड़ीसा के गंग राजा साहित्य और कला के बहुत बड़े प्रेमी हुए। भुवनेश्वर का प्रसिद्ध लिंगराज मन्दिर गंगराजाओं ने ही बनवाया था।

राष्ट्रकूट राजा

८ वी शताब्दीके मध्य भागमें राष्ट्रकूट वंश की स्थापना हुई। इस वंश का सम्थापक दन्तिदुर्ग (७५३-७६० ई०) था। यह पहले चालुक्यों के अधीन एक सामन्त था। लेकिन चालुक्यों के कमजोर पड़ने पर इसने उनसे महाराष्ट्र छीन कर अपना स्वतंत्र राज्य कायम कर लिया।

उसके उत्तराधिकारी कृष्ण (७६०-७७५ ई०) ने राष्ट्रकूट राज्य को सुदृढ़ बनाया। गुफायें कटवाकर एलौरा का प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर इसी राजा ने बनवाया था।

राष्ट्रकूट राजाओं में अनेक प्रसिद्ध राजा हुए। राष्ट्रकूट राजा ध्रुव ने भिन्नमाल के प्रतिहार राजा वत्सराज को पराजित किया। ध्रुव का पुत्र गोविन्द तृतीय बहुत ही प्रतापी राजा हुआ। दक्षिण में उसने कांची के पल्लवों को हराया और उत्तरी भारत में प्रतिहार राजा नागभट्ट को कन्नौज में मार भगाया। दक्षिण में विन्ध्याचल से लेकर लगभग तुंगभद्रा तक उनका राज्य विस्तृत था। दक्षिण गुजरात या लाट भी उसके अधिकार में था।
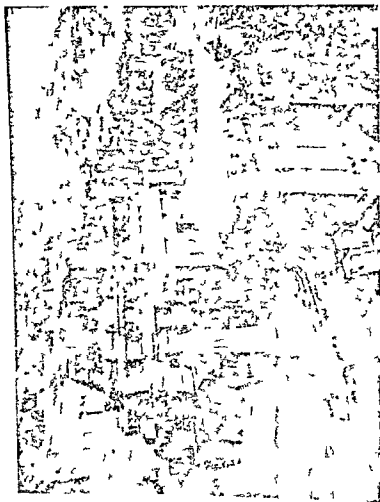
एलोरा का कैलाश-मन्दिर

गोविन्द तृतीय का पुत्र अमोघवर्ष (लगभग८१५-७७ई०) भी बडा प्रतापी राजा हुआ है। वह बडा धर्मात्मा राजा था। उसे युद्ध न भाता था। अत सामरिक दृष्टि से राष्ट्रकूटो का विस्तार रुक गया। इसने नासिक के वजाय मान्यखेट (निजाम के राज्य मे आज कल का मालखेड) को राजधानी बनाया।

अमोघवर्ष के बाद उसका प्रपौत्र इन्द्र तृतीय भी अपने पूर्वजो की तरह बडा भारी विजेता हुआ। उसने कन्नौज के प्रतिहार राजा को युद्ध म परास्त किया।

राष्ट्रकूट राजाओ में कृष्ण तृतीय अन्तिम प्रतापी राजा हुआ। उसका राज्य तजौर तक फैला था। किन्तु उसके बाद के राष्ट्रकूट राजा निर्बल निकले और उनकी सत्ता का जल्दी ही विनाश हो गया। ९७३ ई० में आखिरी राष्ट्रकूट राजा को पश्चिमी–चालुक्य–वशी राजा तैलप द्वितीय ने हरा कर राष्ट्रकूट साम्राज्य का अन्त कर दिया।

कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार राजा

सातवी शताब्दी म गुजर–प्रतिहार राजाओ की शक्ति ने दक्षिणी मारवाड से अपना विकास शुरु किया था। इनकी राजधानी भिनमाल थी। आजकल के कई विद्वानो का अनुमान ह कि हूणो की तरह गुर्जर जाति भी मध्य एशिया से यहा आयी और छठी शताब्दी में उन्होंने पजाब, मारवाड और भडौच या भरूच में अपने राज्य स्थापित कर लिये। इस जाति के नाम से पजाब के एक जिले का नाम गुजरात पडा, प्राचीन

लाट गुजरात कहलाया और मारवाड गुर्जर देश के नाम से विख्यात हुआ। किन्तु गुर्जर-प्रतिहार राजा अपने को विशुद्ध क्षत्रिय मानते हैं। उनका कहना है कि वे राम के प्रतिहार लक्ष्मण के वशज है। अत. वे अपने को प्रतिहार कहने लगे। और चूंकि वे गुर्जर देश के थे, इसलिए गुर्जर-प्रतिहार भी कहलाये।

भिन्नमाल और कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राजा बहुत प्रतापी और यशस्वी हुए है। ८वी शताब्दी के अत मे इस वश का पहला महान् राजा वत्सराज (७७५–८०० ई०) हुआ। मालवा या अवन्ति पर भी शायद उसका अधिकार था। इसने बगाल तक अपनी विजयध्वजा फहरायी और धर्मपाल को युद्ध में हराया। परन्तु राष्ट्रकूट राजा ध्रुव ने अन्त मे उसे हरा कर उत्तरी भारत से भगा दिया।

वत्सराज का उत्तराधिकारी और लडका नागभट्ट द्वितीय भी बहुत प्रतापी हुआ। इसने धर्मपाल को मुगेर की लडाई में हराया और उसके द्वारा नियुक्त कन्नौज के शासक चक्रायुध से कन्नौज छीन लिया। कहते है, उसने पश्चिम में काठियावाड, दक्षिण मे आन्ध्र और पूर्व में बगाल तक प्रभुत्व स्थापित किया। उसने सिंध के अरबो को भी आगे बढने से रोका था। लेकिन राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय से उसे हार खानी पडी जिससे कुछ समय के लिए प्रतिहारो का उत्तरी-भारत से प्रभुत्व उठ गया।

परन्तु नागभट्ट द्वितीय के पौत्र मिहिर भोज (लगभग ८३६–८९०ई०) ने पुन उत्तरी भारत मे गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य को कायम कर लिया। भोज ने

भिन्नमाल के बजाय कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। पूर्व में पाल राजा को हराकर उसने मगध तक अपना राज्य फैलाया। उत्तर मे पूर्वी पजाव से लेकर दक्षिण मे विध्याचल तक उसका राज्य विस्तृत था।

इस प्रकार हर्ष के बाद भोज के प्रयत्न से उत्तरी भारत में पुन एक महान साम्राज्य स्थापित हुआ ।

भोज शक्तिशाली विजेता होने के साथ-साथ सुयोग्य शासक भी था। उसके राज्य मे सर्वत्र सुख और शांति थी । उसके समय में व्यापारियो और यात्रियो को चोर डाकुओ का कोई भय न था। निःसन्देह गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य ने भोज के समय मे बहुत विकास किया ।

भोज का उत्तराधिकारी महेंद्रपाल ने पश्चिम मे काठिया वाड और पूरब मे उत्तरी-बगाल तक के प्रान्त अपने अधिकार में किये थे। लेकिन उसके उत्तराधिकारी महीपाल के समय से प्रतिहार साम्राज्य का ह्रास शुरू हो गया। उसके समय मे राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय ने कन्नौज पर आक्रमण कर उसे लूट लिया । इस घटना के बाद से प्रतिहारो की शक्ति घटती ही चली गयी। महमूद गजनबी ने जब कन्नौज पर आक्रमण किया तो प्रतिहार राजा राज्यपाल से कुछ भी करते न बना।

चेदी का कलचुरी वंश

९ वी शताब्दी के मध्य म मध्य-भारत मे कलचुरी राज्य स्थापित हुआ। प्राचीन चेदि राज्य का महाकोशल

प्रान्त (छत्तीसगढ) और नागपुर उनके राज्य में शामिल थे, इसलिए उन्हें चेदी भी कहा जाता है। इस राज्य का संस्थापक कोकल्लदेव (लगभग ८५० ई०) हुआ। कलचुरी राजाओं की राजधानी त्रिपुरी (जबलपुर में) थी।

जेजाकभुक्ति के चन्देल

चन्देलों का राज्य जेजाकभुक्ति या बुन्देलखण्ड में था। ये प्रारम्भ में प्रतिहार राजाओं के अधीन थे। चन्देल वंश का पहला ऐतिहासिक राजा नन्नुक (लगभग ८३१ ई०) हुआ।

चन्देल वंश का पहला प्रतापी राजा यशोवर्मा हुआ। इसने कन्नौज के प्रतिहार राजा से विष्णु की मूर्ति लेकर खजुराहो में अपने बनवाये एक मन्दिर में स्थापित की। कालिंजर के दुर्ग पर भी उसने अधिकार किया। तब से चन्देल कालिंजर के राजा भी कहलाये जाने लगे। चन्देलों की राजधानी पहले खजुराहो और बाद में महोबा थी।

यशोवर्मा का लडका धंग (लगभग ९५५–१००२ई०) भी बहुत यशस्वी हुआ है। सुबुक्तगीन के आक्रमण के समय उसने ओहिन्द के राजा जयपाल को मदद दी थी। उसके समय में ही खजुराहो में बड़े सुन्दर और भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ था। वैसे लगभग सभी चन्देल राजा कला के उपासक हुए हैं!

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय बुन्देलखण्ड में धंग का लड़का गंड (लगभग १००२–१०२५ ई०) राज्य करता था।
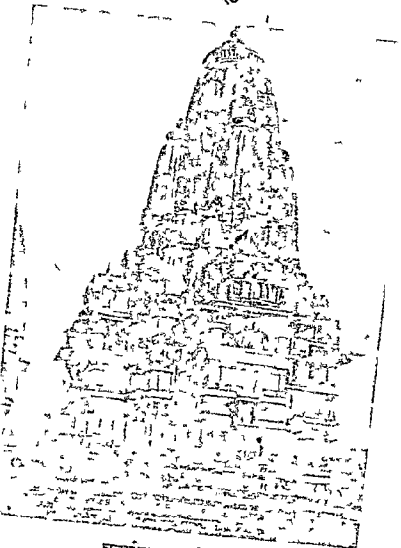
चतुर्भुज का मन्दिर
(चंदेल राजाओं का बनवाया हुआ)

मालवा के परमार

मालवा में उपेन्द्र या कृष्णराज ने परमार वंश का राज्य स्थापित किया। परमारों की राज-नगरी धारा थी।

इस वंश में पहला प्रतापी राजा मुन्ज (लगभग ९७४–९९७ई०) हुआ। यह बहुत बड़ा योद्धा और साहित्य का प्रेमी था। इसने कल्याणी के चालुक्य राजा तैलप द्वितीय को कई बार युद्ध में पराजित किया। लेकिन दुर्भाग्य से अन्त में वह स्वयं तैलप द्वारा पराजित हुआ और मार डाला गया।

इसके बाद परमार वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा भोज हुआ। इसका वर्णन आगे किया जायगा।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१–राजपूत कौन थे? उनमें क्या विशेष गुण थे?

२–उत्पल वंश में कौन-कौन प्रसिद्ध राजा हुए हैं?

३–धर्मपाल, नागभट्ट द्वितीय और गोविन्द तृतीय के बारे में आप क्या जानते हैं?

४–गुर्जर-प्रतिहार कौन थे? उनमें सबसे प्रतापी राजा कौन हुआ है?

५–मुन्ज कौन था? उसका अन्त किस प्रकार हुआ?

तुर्क-शासक सुबुक्तगीन और उस के लडके जगत्-विख्यात महमूद गजनवी के हमले के रूप मे आया था।

दुर्भाग्य से इस तूफान के समय प्रतिहारों की शक्ति टूट चुकी थी और कन्नौज की फिर वही दुर्गति हो रही थी, जो हर्ष की मृत्यु के बाद प्रथम कन्नौज-साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर हुई थी। कन्नौज मे साम्राज्य का यह दूसरा पतन था। उस की जगह फिर अनेक छोटे राज्य पैदा हो गये थे, जिन में आपसी मेल बहुत कम था। अतएव शक्तिशाली और संघटित तुर्क आक्रमणकारियों को भारत की कटी-बटी रियासतो को पराजित करने और रौदने मे विशेष कठिनाई नही उठानी पडी।

सुबुक्तगीन और जयपाल

अलप्तगीन के बाद जब सन् ९७७ ई० मे सुबुक्तगीन गजनी का शासक हुआ तभी से पंजाब और काबुल के ब्राह्मण-शाही राजाओ मे युद्ध शुरू हो गया। ब्राह्मण-शाही राजा जयपाल ने जब देखा कि काबुल के पास ही एक नया तुर्क-राज्य स्थापित हो गया है, तो उसे बहुत चिन्ता हुई। जयपाल की चिन्ता ठीक ही थी, क्योकि सुबुक्तगीन शाही-राज्य के लमगान प्रान्त की ओर बढकर काबुल लेने के प्रयत्न में था। अत. तुर्कों का बढाव रोकने के लिए जयपाल सेना लेकर गजनी की ओर बढा। लमगान के पास जयपाल की शत्रु से मुठभेड हुई। अचानक वर्फ का तूफान उठने से जयपाल की सेना ऐसी परेशान हो गयी कि उसे उस समय सुबुक्तगीन के साथ संधि कर लेनी पडी।

लेकिन जयपाल यह जानता था कि तुर्कों की बाढ़ को यदि रोका न गया तो वे एक दिन सारे भारत को ही रौंद डालेंगे अतः इस खतरे से देश को बचाने के लिए उसने भारत के दूसरे राजाओं से भी तुर्की बाढ़ को रोकने के लिए मदद माँगी। उसकी पुकार पर दिल्ली, अजमेर, कन्नौज और कालिंजर के राजाओं ने आदमी और धन जयपाल की मदद के लिए भेजे। जयपाल अपनी भारी सेना लेकर लगभग सन् ९९१ ई० में पुनः लमगान पहुँचा। किन्तु इस बार भी वह हार गया और लमगान पर सुबुक्तगीन का अधिकार हो गया।

महमूद गजनवी

सन् ९९७ ई० में सुबुक्तगीन की मृत्यु हो गयी और उसका बेटा प्रसिद्ध-विजेता महमूद गजनी का शासक हुआ। सुबुक्तगीन ने उत्तर-पश्चिमी सीमान्त को पारकर भारत के अन्दर कदम न रखा था। लेकिन यह काम उसके बेटे महमूद ने किया। महमूद का अपने तुर्क-साम्राज्य

की। बगदाद के खलीफा ने उसे, 'यमीनुद्दौला' और अमीनुल खिलत् (धर्म का रक्षक) की उपाधियाँ प्रदान कीं। महमूद का वश यामिनी-वश भी कहलाता है।

भारत पर १७ हमले

महमूद ने भारत पर कुल मिला कर १७ आक्रमण किये, जिनमे से मुख्य निम्नलिखित थे—

सन् १००१ मे महमूद ने पेशावर के मैदान मे पजाव के राजा जयपाल को युद्ध में हराया। इस पराजय से दुखी होकर जयपाल ने अपने बेटे आनन्दपाल को राज्य सौंप कर स्वय चिता में जलकर प्राण दे दिये।

सन् १००८ ई० मे महमूद ने फिर पजाव पर आक्रमण किया। आनन्दपाल ने हिन्दुस्तान के राजाओ से मदद की प्रार्थना की। अत दिल्ली, अजमेर, कन्नौज, कालिजर, उज्जैन और ग्वालियर आदि के राजाओ ने उसे मदद भेजी। हिन्दू-स्त्रियो ने कहते हैं,गहने आदि बेचकर धनसे राजपूत सघको मदद पहुँचायी। खोखरो या गक्खडो ने भी आनन्दपाल का साथ दिया। किन्तु इतने पर भी आनन्दपाल जीत न सका। इस हार से राजपूत राजाओ की हिम्मत टूट चली और वे सगठित होकर फिर कभी तुर्क आक्रमणकारियो का सामना न कर सके। दूसरी ओर पजाव और लाहौर पर अधिकार स्थापित हो जाने से महमूद के लिए अब भारत मे घुसने का मार्ग सरल हो गया।

आनन्दपाल को हराकर महमूद ने नगरकोट पर भी आक्रमण किया।

सन् १०१८ मे महमूद ने मथुरा पर आक्रमण किया और

वहा के मदिरो को तोड़ा तथा लूटा। इसी समय उसने कन्नौज पर भी आक्रमण किया। वहा का निर्बल राजा राज्यपाल महमूद के डर से राजधानी छोड़कर भाग निकला। किन्तु बाद में उसने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली।

महमूद के लौटने पर चंदेल राजा गंड ने राज्यपाल पर आक्रमण कर उसे मार डाला। महमूद ने यह समाचार पाकर १०१९ ई० में गड को दंड देने के लिए कालिंजर पर आक्रमण कर दिया। गड सामना न कर सका और भाग खड़ा हुआ। १०२२ ई०में महमूद ने दुबारा कालिंजर पर आक्रमण किया। गड ने हार मान कर महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली।

महमूद का १६ वां आक्रमण

महमूद का १६ वा और सब से प्रसिद्ध आक्रमण सोमनाथ के मन्दिर पर हुआ। यह मन्दिर काठियावाड में समुद्र के किनारे बीरावल में था। यह शिव मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था। मन्दिर की जागीर में हजारो गाव थे। उत्तरी भारत से गगाजल रोज शिव के स्नान के लिए वहा लाया जाता था। मन्दिर में पूजा के लिए लगभग एक हजार पुरोहित नियुक्त थे। इस मन्दिर में असंख्य धन और सम्पत्ति जमा थी।

महमूद को सोमनाथ के मन्दिर के असंख्य धन-माल की खबर थी। अत. उसे लूटने के लिए ही सन् १०२४ ई० मे वह गजनी से गुजरात के लिए चल पड़ा। मुलतान, सिंध और राजपूताना की मरुभूमि से बढ़ता हुआ वह १०२५ ई० में अनहिलवाडा पहुंचा। उस के पहुचते ही यहाँ का सोलंकी राजा भीम

भाग खडा हुआ। महमूद ने उस की राजधानी को लूटा और तब सोमनाथ की ओर बढा। सोमनाथ म राजपूतो ने महमूद को रोकने का काफी प्रयत्न किया लेकिन असफल रहे। महमूद ने मन्दिर म घुस कर शिव लिंग को तोड डाला और जो कुछ धन-माल था सब लूट लिया। महमूद राजपूताना से होकर लौटना चाहता था, लेकिन मालवा के शक्तिशाली राजा भोज के भय से उधर का मार्ग छोडकर वह कच्छ और सिन्धु नदी के मार्ग से वापस गया।

१७ वां आक्रमण

महमद का अन्तिम आक्रमण १०२७ ई० म सिंध के जाटो पर हुआ। इस आक्रमण के लगभग तीन वर्ष बाद महमूद की मृत्यु हो गयी।

महमूद गजनवी के आक्रमणो का परिणाम

महमूद ने धन के लिए ही भारत पर अनेक बार आक्रमण किये थे। इस धन के द्वारा वह तुर्क ईरानी साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। उस का ध्येय भारत म न साम्राज्य स्थापित करने का था और न इस्लाम धर्म का प्रचार ही था। केवल अपने सहधर्मियो को उत्साहित करने के लिए ही उसने अपने आक्रमणों को 'जेहाद' का नाम दिया था।

महमूद के आक्रमणो का भारत की जनता पर बहुत बुरा असर पडा। महमूद की लूट-पाट, मार-काट, जबरदस्ती मुसलमान बनाने की नीति और मन्दिरो व मूर्तियो के खडन के कार्यों

से भारत के लोगो ने यह समझा कि शायद 'इस्लाम-धर्म' ही अपने अनुयायियों को ऐसा करने की आज्ञा देता है। महमूद के इन कुकृत्यों से जो भ्रम पैदा हुआ, उससे भारतीयो के दिल में इस्लाम-धर्म के प्रति डर और शका के भाव उत्पन्न हुए और अच्छी भावनाएं पैदा न हो सकी। नि.सन्देह उसके आक्रमणों का यह बहुत बुरा असर हुआ।

महमूद कला और साहित्य का भी प्रेमी था। उसने भारत के धन से गजनी में अनेक भवन आदि बनवाये। उस के दरबार मे अनेक विद्वान् रहते थे। उस के समय के दो विद्वान्-फिरदौसी और अलबैरुनी-बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। अलबेरुनी पंजाब में रहा और वहा उसने संस्कृत तथा भारत के अनेक शास्त्रो का अध्ययन किया। उस ने भारत के बारे मे एक बड़ी पुस्तक लिखी है।

महमूद जैसा उग्र विजेता और कलाप्रेमी था, वैसा चतुर शासक न था। अत: उस के मरते ही उस का साम्राज्य भी नष्ट हो गया।

तंजौर के चोल-सम्राट राजराज और राजेन्द्र चोल

जब महमूद गजनवी उत्तरी और पश्चिमी भारत के राजाओं और प्रदेशो को रौंद रहा था, उसी समय तजौर के चोल-राजा भी दक्खिन और पूरब के राज्यों को रौंदने में लगे थ।

तंजौर के चोल-राजाओं में राजराज और राजेन्द्र चोल बहुत बड़े विजेता और शासक हुए हैं। राजराज सन् ९८५ ई० में तंजौर के सिहासन पर बैठा। उसने मलाबार के नायकों

मदुरा के पाड्यों, मैसूर के गग और वेगी के पूर्वी चालुक्य राजाओं को हरा कर चोल साम्राज्य को दूर-दूर तक फैला दिया। उसकी जल-सेना और जहाजी बेड़ा बहुत प्रबल था। जल-सेना के बल पर ही उसने लका और मलाबार तट के द्वीपों को जीत लिया था। राजराज प्रथम शैव था। उस का बनवाया हुआ राजराजेश्वर का शिव मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। यह मन्दिर तंजौर में अभी तक वर्तमान है।

राजेन्द्र चोल प्रथम

राजराज के बाद सन् १०१२ ई० में राजेन्द्र चोल प्रथम तजौर का राजा हुआ। चोल राजाओं में यह सब से बड़ा विजेता निकला ; उसने पश्चिमी चालुक्य राजा को युद्ध में परास्त किया। दक्षिण के राज्यों के अलावा इस ने पूरबी भारत के राज्यों को भी रौंद डाला। उस की विजयी सेना गजनी की तुर्क सेना की तरह दक्षिण और पूरब में दूर-दूर तक विजय करती चली गयी। उसने मध्य-भारत, उड़ीसा और बंगाल तक आक्रमण किया और वहां के राजाओं को हराया।

अपनी प्रबल नौ-सेना के द्वारा उसने बर्मा के तटवर्ती प्रदेश मलाया प्रायद्वीप और निकोबार तथा अन्डमान द्वीपों को जीता।

उसने अपनी जहाजी शक्ति से श्री विजय (जावा-सुमात्रा आदि) के शैलेन्द्र-वंशी राजा को भी युद्ध में परास्त किया। यह उसकी सब से बड़ी विजय थी। इस विजय के फलस्वरूप बृहत्तर-भारत के बहुत बड़े भाग पर उसका अधिकार हो गया

महान् राजेन्द्र चोल प्रथम, महमूद गजनवी का समकालीन था। महमूद की मृत्यु के लगभग १४ वर्ष बाद उसकी भी मृत्यु हो गई।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१–१० वीं शताब्दी में भारत की क्या अवस्था थी ?

२–नया तूफान, क्या था ?

३–जयपाल कौन था ? सुबुक्तगीन और उसमें क्या संबंध था ?

४–महमूद गजनवी ने भारत पर क्यों आक्रमण किये ? कुल कितने हमले उसने भारत पर किये थे ?

५–महमूद के समय में दक्षिणी–भारत में कौन राज्य सबसे शक्ति-शाली था।

अध्याय ४

उत्तर-मध्यकालीन राजपूत राज्य

(११ वी १२ वी शताब्दी)

महमूद गजनवी के डेढसौ वर्ष बाद भारतपर फिर मुहम्मद गोरी ने आक्रमण किया। गोरी के आक्रमण से पहिले ११ वी-१२ वी शताब्दी में भारत की राजनैतिक दशा निम्न प्रकार की थी।

पंजाब

पंजाब को महमूद गजनवी ने अपने राज्य म मिला लिया था। तब से मुहम्मद गोरी के आक्रमण तक पजाब उसी के वशजो के अधिकार म रहा। महमूद की मृत्यु के कुछ ही समय बाद सल्जुक जाति के तुर्कों ने ईरान और पश्चिमी-एशिया से गजनी साम्राज्य को समाप्त कर दिया था। इसके बाद महमूद के वशजो का शासन केवल अफगानिस्तान और पजाब पर रह गया था।

पजाब के गजनवी शासको ने भारत के अन्दर घुसने का काफी प्रयास किया, लेकिन वे पजाब से आगे अपना राज्य बढाने म असफल ही रहे।

सल्जुक तुर्कों के बाद गोर के तुर्कों ने गजनी के राज्य को अफगानिस्तान से भी समाप्त कर दिया। गोर का प्रदेश गजनी और हरात के बीच में पडता है। लगभग सन् ११५० में गोर के एक शासक अलाउद्दीन हुसैन ने गजनी के शासक बहराम को हराकर गजनी नगर को जला डाला। बहराम के बाद खुसरू शाह को गज्ज जाति के तुर्कों ने जब गजनी से खदेड दिया तो वह लाहौर चला आया। अफगानिस्तान भी इस तरह महमूद के वशजो के हाथ से जाता रहा। अन्त में गोर के शासक गयासुद्दीन मुहम्मद ने सन् ११७३–७४ के लगभग गजनी पर कब्जा कर लिया और अपने भाई मुइजुद्दीन मुहम्मद को गजनी का शासक नियुक्त किया। मुईजुद्दीन,शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के नाम से विख्यात है। मुहम्मद गोरीके आक्रमण के समय पजाब में गजनवी शासक खुसरू मलिक राज्य करता था।

दिल्ली और अजमेर के चोहान

११ वी शताब्दी के अन्त में साभर या शाकम्भरी के प्रसिद्ध चौहान राजा अजयराज या अजयदेव ने अजयमेरु नगर को बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। यह अजयमेरु आजकल का अजमेर है। अजयराज का पौत्र विग्रहराज या बीसलदेव भी बहुत प्रतापी राजा हुआ।

विग्रहराज (लगभग सन् ११५३–११६४ ई०) ने पजाब के गजनवी शासकों को हराया और पजाब के कुछ भाग को अपने राज्य में मिला लिया। उसने तोमर राजा को हराकर दिल्ली पर भी कब्जा कर लिया। तब से अजमेर

चौहान शासक दिल्ली के भी शासक कहलाय। विग्रहराज एक विजेता ही नही वरन् साहित्य-प्रेमी राजा भी था। वह विद्वानो का आश्रय-दाता था। स्वय भी वह एक अच्छा कवि व नाटककार था।

दिल्ली और अजमेर के चौहान वश का अतिम प्रसिद्ध राजा विग्रहराज का भतीजा पृथ्वीराज हुआ। पृथ्वीराज चौहान बहुत बडा योद्धा और प्रतापी पुरुष था। मुहम्मद गोरी ने इसी के समयमें पजाब और दिल्ली पर आक्रमण किये थे।

कन्नौज के गहड़वाल

गुर्जर-प्रतिहारो की राजसत्ता समाप्त होने पर ११ वीं शताब्दी के अन्त मे चन्द्रदेव ने कन्नौज पर अधिकार कर गहडवाल वश का राज्य स्थापित किया। बनारस, अयोध्या व पूरा संयुक्त प्रान्त भी उस के राज्य मे शामिल थे। चन्द्रदेव का पौत्र गोविन्द चन्द्र बहुत प्रतापी राजा हुआ। उस ने लगभग १११४ से ११५५ ई० तक राज्य किया। वह भोज की तरह एक विद्वान राजा था।

गोविन्द चन्द्र का पौत्र जयचन्द्र, गहडवाल वश का अन्तिम राजा हुआ। इस ने लगभग सन् ११७० से ११९४ ई० तक राज्य किया। पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द्र मे आपसी मनमुटाव था, इसलिए वे बाहरी शत्रु का मिल कर मुकाबला न कर सके। अत. पृथ्वीराज का अन्त कर मुहम्मद गोरी ने जयचन्द्र को भी खतम कर दिया।

बुन्देलखंड के चन्देल

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय बुन्देलखंड का चंदेल राजा गंड था। उसे महमूद ने युद्ध में परास्त भी किया था। गंड के बाद कलचुरी राजा गांगेयदेव और उस के लड़के कर्ण ने चन्देल राजाओं की शक्ति को नष्ट कर दिया। लेकिन ११ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कीर्तिवर्मा ने चन्देल शक्ति को फिर से संघटित किया। उस ने कलचुरि राजा कर्ण को परास्त करके फिर से अपने वंश की प्रतिष्ठा कायम की। कीर्तिवर्मा का पौत्र मदनवर्मा (१२ वीं शताब्दी) भी बहुत प्रतापी राजा हुआ। इसके समय में चन्देल राज्य बहुत उन्नत था। उसने कालिंजर में अनेक सुन्दर मन्दिरों का निर्माण करवाया था। मदन वर्मा का पौत्र परमार्दिदेव या परमाल (लगभग सन् ११६७–१२०३) चन्देल वंश में अन्तिम प्रसिद्ध राजा हुआ। पृथ्वीराज चौहान और परमार्दिदेव में वैमनस्य था। पृथ्वीराज ने कई बार परमार्दिदेव पर आक्रमण किये थे। इसलिए मुहम्मद गोरी ने जब पृथ्वीराज पर चढ़ाई की, तब चन्देल राजा भी गहड़वाल राजा जयचन्द्र की तरह दूर ही से तमाशा देखता रहा। परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीराज और जयचन्द्र के बाद मुहम्मद गोरी के सेनापति कुतुबुद्दीन ने सन् १२०२ ई० में परमार्दिदेव को हरा कर कालिंजर भी छीन लिया। इस हार के कारण चन्देलों की शक्ति बहुत घट गयी और उनका पुराना प्रभुत्व समाप्त हो गया।

त्रिपुरी के चेदि या कलचुरी

चदि राज्य महमूद गजनवी के आक्रमणो से अछूता रह गया था। ११वी शताब्दी म इस वश का प्रसिद्ध और प्रतापी राजा गागेयदेव त्रिपुरी में राज्य करता था। प्रतिहारो की शक्ति के समाप्त होन पर गागेयदेव ने बनारस तथा प्रयाग पर अधिकार कर लिया था। उत्तरी बिहार (त्रिभुक्ति) को भी उसने जीता था। अपनी इन विजयो के कारण उसने विक्रमादित्य की उपाधि भी धारण की थी।

गागयदेव का लडका कर्ण (लगभग १०४१–१०७०) भी बहुत प्रतापी राजा हुआ। कर्ण ने प्रतिहार और चन्देल राजाओ को परास्त किया। उस ने गुजरात के राजा भीम सोलकी से मिल कर माल्वा के यशस्वी परमार राजा भोज को भी परास्त किया। पूरब मे उसने बगाल के पाल राजाओ से युद्ध किया और दक्षिण में उस ने चोल तथा पाड्य राजाओ के रण मे छक्के छुडा दिये।

किन्तु वृद्धावस्था में कर्ण को अनेक पराजय सहनी पडी। चन्देल राजा कीर्तिवर्मा ने कर्ण को हराकर बुन्देलखड म पुन चन्देल प्रभुता को स्थापित किया। माल्वा म भोज क उत्तराधिकारी उदयादित्य ने पुन परमार सत्ता को सघन्ति किया और कन्नौज में गहडवाल चन्द्रदेव ने भी एक स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया। अत कर्ण के बाद से कलचुरियो की शक्ति शिथिल होती चली गयी। नि सन्देह कर्ण ने पुष्यभूति सम्राट हर्ष के

समान उत्तरी-भारत में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित करने की भरसक चेष्टा की,किन्तु वह सफल न हो सका। इस का कारण राजपूतों की आपसी फूट और ईर्ष्या थी। इसीलिए १२वीं शताब्दी के अन्त में जब पुनः तुर्क आक्रमण हुए, तो आपस में मेल न रहने के कारण राजपूत एक के बाद एक हारते ही गये।

मालवा के परमार

महमूद के आक्रमण के समय मालवा में महान् राजा भोज (लगभग १०१०–१०५५ ई०) राज्य करता था। उस की शक्ति से डरकर ही महमूद राजपूताना की ओर नहीं बढ़ा था। उसने कल्याणी के चालुक्य राजा जयसिंह को हराकर मुन्ज की हार का बदला लिया। गुजरात के सोलंकी राजा भीम और कलचुरि गांगेयदेव को भी उस ने परास्त किया। लेकिन मुन्ज की तरह उस का अंत भी दुःख-दायी हुआ। इस विजयी राजा को आखिर में सोलंकी, चालुक्य और कलचुरि राजाओंके संयुक्त आक्रमण का सामना करना पड़ा और युद्ध-भूमि में ही उसके प्राण गये।

भोज बहुत बड़ा विद्या-प्रेमी तथा विद्वानों का संरक्षक था। वह स्वयं भी बहुत बड़ा विद्वान और कवि था। उस की राजधानी धारानगरी संस्कृत विद्या का केन्द्र थी। अनेक प्रसिद्ध कवि और पंडित उस की राज-सभा की शोभा बढ़ाते थे। उस के सु-शासन और विद्या-प्रेम की कहानियां आज भी भारत में प्रचलित हैं और आज भी प्रत्येक भारतवासी प्रेम से भोज का नाम लिया करता है।

सेन और कर्णाट वंश

आरम्भ में सेन राजा बम्बई प्रान्त के कराट जिले में रहते थे। ११ वीं शताब्दी के अन्त में विजय सेन और नान्यदेव नामक दो कर्णाटों ने पश्चिमी बंगाल और मिथिला में दो स्वतंत्र राज्य कायम किये। पालों की शक्ति क्षीण होने पर विजय सेन ने पूर्वी और उत्तरी बंगाल पर भी अपना अधिकार कर लिया। सम्भवतः उसने नान्यदेव को हरा कर मिथिला (उत्तरी बिहार) को भी अपने अधिकार में कर लिया।

विजय सेन और उसके उत्तराधिकारी राजा सेन नाम से प्रसिद्ध हैं। सेन राजा 'कर्णाट-क्षत्रिय' भी कहलाते हैं। मूलतः वे ब्राह्मण थे,इसलिये उन्हें ब्राह्म-क्षत्रिय भी कहा जाता था। विजयसेन की विजयों ने पालों के प्रभुत्व का अन्त कर दिया और बंगाल तथा मगध में सेन राजाओं का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

विजयसेन का उत्तराधिकारी वल्लाल सेन विद्वान और गुणवान शासक था। उसका लड़का लक्ष्मण सेन (लगभग सन् ११७९–१२०६ ई०) भी बहुत प्रतापी शासक हुआ है। वह अपने पिता की तरह विद्वान और दादा की तरह पराक्रमी और विजेता था! उसके दरबार में अनेक विद्वान रहते थे। गीत-गोविन्द का प्रसिद्ध रचयिता जयदेव उसका राज कवि था। अपने आप भी वह एक विद्वान और कवि था।

लक्ष्मणसेन विद्वान होने के साथ-साथ योद्धा भी था। कहते

हैं,उसने अपनी विजयों की स्मृति में पुरी,बनारस और इलाहाबाद में विजय स्तम्भ बनवाये थे। किन्तु वृद्धावस्था में उसे बख्तियार खिल्जी से भारी हार खानी पड़ी (लगभग १२०२ ई०)। इस हार के बाद से सेन राजाओं की शक्ति का ह्रास शुरू हो गया।

गुजरात के सोलंकी

महमूद के आक्रमण के समय (सन् १०२५ ई०) गुजरात में सोलंकी राजा भीम राज्य करता था। गजनवी ने उसकी राजधानी अनहिलवाड़ा पर जब चढ़ाई की थी तो वह भाग खड़ा हुआ था। लेकिन गजनवी के लौट जाने पर भीम ने पुनः अपनी राजधानी पर अधिकार कर लिया था। भीम ने कलचुरी-कर्ण से मिल कर भोज को हराया था। उसने लगभग सन् १०६० तक राज्य किया।

भीम का पौत्र जयसिंह सिद्धराज (लगभग १०९४-११४४ ई०) इस वंश का बहुत प्रतापी राजा हुआ। गुजरात के प्रसिद्ध राजाओं में उसकी गिनती की जाती है। उसने सिंध के अरबों को नीचा दिखाया था और परमार राजाओं से मालवा छीन लिया था। उसका उत्तराधिकारी कुमार पाल भी बहुत प्रसिद्ध और प्रतापी राजा हुआ।

सोलंकी राजा मूलराज द्वितीय (लगभग ११७७-११७८) के समय में मुहम्मद गोरी ने गुजरात पर आक्रमण किया, लेकिन उसे हार कर लौट जाना पड़ा। कुतुबुद्दीन ऐबक ने भी अनहिलवाड़ा पर चढ़ाई की थी। इन आक्रमणों से

सोलंकियो की शक्ति क्षीण हो गयी और दक्षिण-गुजरात के बघेल सरदार प्रबल हो उठे। १३ वी शताब्दी के मध्य में बघेल शासक बीसलदेव ने अनहिलवाडा पर भी कब्जा कर लिया। किन्तु बघेल शासक ज्यादा दिन तक राज न कर सके। १३ वी शताब्दी के अन्त में अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर कब्जा कर लिया।

पिछले चालुक्य

११ वी शताब्दी मे पश्चिमी चालुक्य राजा दक्खिन में काफी प्रभावशाली थे। किन्तु इन चालुक्य राजाओ को निरंतर तजौर के चोल राजाओ से सघर्ष करना पड़ा। इन युद्धो के कारण उनकी शक्ति को बहुत बडा धक्का लगा।

पश्चिमी चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम (लगभग १०४१-१०६८ ई०) ने कल्याणी (वर्तमान निजाम राज्य में) नगर को राजधानी बनाया। इसे राजेन्द्र चोल के उत्तराधिकारियों से युद्ध करना पड़ा। राजेन्द्र देव या परकेसरी ने सोमेश्वर को कोप्पम के युद्ध में परास्त किया।

सोमेश्वर के उत्तराधिकारियो को भी बराबर चोल राजाओ से लड़ते-भिड़ते रहना पड़ा। इस कारण चालुक्यों की शक्ति दिनो-दिन घटती ही गयी। पश्चिमी चालुक्य राजाओ मे विक्रमादित्य या विक्रमाक (लगभग १०७६-११२६ ई०) बहुत प्रतापी शासक हुआ। सिंहासनपर बैठने के समय मे उसने एक नया सवत् भी चलाया जो चालुक्य-विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध है। उसने अपने वंश के

प्रतिष्ठा को बढाया और लगभग ५० वर्ष तक शांति के साथ शासन किया। वह विद्या-प्रेमी और विद्वानो का आश्रय दाता था। हिन्दू-कानून की प्रसिद्ध टीका मिताक्षरा का लेखक विज्ञानेश्वर उसी के दरबार मे रहता था।

किन्तु विक्रमादित्य के उत्तराधिकारी कमजोर निकले। चालुक्य राजा तैलप तृतीय से उसके सेनापति विज्जल ने कल्याणी का राज्य छीन लिया। लगभग ३० वर्ष तक विज्जल के वंशजों ने राज्य किया। लगभग ११८३ मे चालुक्य राजा सोमेश्वर चतुर्थ ने पुन. कल्याणी पर अधिकार कर लिया। किन्तु इस बीच चालुक्य राजाओं के और भी कई सामन्त राजा स्वतन्त्र बन बैठे इन स्वतन्त्र होनेवालो मे देवगिरी के यादव, वारगल के काकतीय और द्वारसमुद्र के होयसल सरदार भी थे।

देवगिरी के यादव

१२ वी शताब्दी में पश्चिमी चालुक्यो के कमजोर पडने पर यादव राजा भिल्लम ने अपना स्वतन्त्र राज्य कायम किया। कृष्णा नदी के उत्तर का प्रदेश उसके अधिकार मे था। उसका राज्य नासिक से देवगिरी तक फैला था। देवगिरी (वर्तमान दौलताबाद,निजाम–राज्य में) को भिल्लम ने अपनी राजधानी बनाया। यह नगर अन्त तक यादवो की राजधानी रहा।

यादव राजाओं में सिंघण (लगभग सन् १२१०–१२४७ ई०) बहुत प्रतापी हुआ। उसने होयसल राजा को हराया और अपना राज्य कृष्णा नदी के दक्षिण तक फैला दिया।

उसने गुजरात पर भी कई आक्रमण किये। सिंघण एक विद्यानुरागी राजा था।

इस वंश का अन्तिम स्वतन्त्र राजा रामचन्द्र (लगभग १२७१-१३०९ ई०) हुआ। इसके समय में अलाउद्दीन खिलजी ने देवगिरी पर आक्रमण करके यादवों का प्रभुत्व नष्ट कर दिया।

वारंगल के काकतीय

१२वीं शताब्दी में कल्याणी के चालुक्यों की शक्ति क्षीण होने पर तेलंगाना (निजाम राज्य का पूर्वी भाग) में काकतीय सामन्तों ने भी अपना स्वाधीन राज्य स्थापित कर लिया था। इन की राजधानी वारंगल या ओरंगल (निजाम के राज्य में) थी। गणपतिनाग (लगभग सन् ११९९-१२६१ ई०) इस वंश में सबसे प्रतापी राजा हुआ है। किन्तु उसके उत्तराधिकारी निर्बल साबित हुए। फलत. अलाउद्दीन खिलजी के समय में काकतीय राजा प्रतापरुद्र ने दिल्ली की अधीनता कबूल कर ली।

द्वारसमुद्र के होयसल

होयसल राजा देवगिरी के यादवों की तरह अपने को यदु की सन्तान मानते थे। इसलिए होयसल भी यादव थे। होयसल राजाओं की राजधानी द्वारसमुद्र या धोरसमुद्र (मैसूर में–हलेबिद) थी। इस वंश का पहला शक्तिशाली राजा विष्णुवर्द्धन (लगभग सन् १११०–११४० ई०) हुआ। लगभग सारा मैसूर का प्रान्त या दक्षिणी कर्णाटक उसके अधि-

कार म था। विष्णुवर्द्धन का पौत्र वीर बल्लाल (लगभग सन् ११७२–१२१५ ई०) भी बहुत प्रतापी राजा हुआ है। किन्तु १४ वीं शताब्दी म देवगिरी को लेने के बाद अलाउद्दीन खिलजी की सेनाओं ने द्वारसमुद्र पर आक्रमण करके होयसलों की शक्ति भी नष्ट कर दी।

होयसल राजा बहुत बड़े कला-प्रेमी और भवन-निर्माता हुए। श्रवणबेलगोल और हलेबिद आदि स्थानों में उनके बनाये भव्य मन्दिर अभी तक वर्तमान हैं। उनके समय की शिल्प-कला भी बहुत भव्य और उन्नत थी। उन के समय की कला की कृतियों के सुन्दर नमूने आज भी मैसूर रियासत में देखने को मिल सकते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१–महमूद के बाद भारत की राजनैतिक अवस्था कैसी थी ?

२–११ वीं–१२ वीं शताब्दी में उत्तरी-भारत म कौन-कौन प्रसिद्ध राजपूत राज्य थे ?

३–राजेन्द्र चोल के उत्तराधिकारियों का वर्णन करिये।

४–पश्चिमी चालुक्यों का किस तरह अन्त हुआ ? उन का ह्रास होने पर दक्षिण म कौन नये राज्य पैदा हुए ?

५–होयसल राजा किसलिए प्रसिद्ध हैं ?

अध्याय--५

पूर्व-मध्यकालीन भारत (सन् ७०० से १२००)

धार्मिक अवस्थाः बौद्धधर्म का पतन (वज्रयान)

गुप्त राजाओ और हर्ष के समय तक भारत में बौद्ध-धर्म खूब फला-फूला। किन्तु हर्ष के बाद ही बौद्ध-धर्म उत्तरी भारत में घटने लगा और उसका प्रचार केवल पूर्वी-भारत—बिहार और बगाल में सीमित रह गया था। गुप्तो के समय से भारत में पौराणिक हिन्दू-धर्म का प्रचार बढने लगा था। ब्राह्मणो ने बुद्ध को भी विष्णु का एक अवतार मानकर उन्हें हिन्दू-देवताओ में सम्मिलित कर लिया था। बुद्ध और विष्णु के एक हो जाने से बौद्धो और ब्राह्मणो के बीच का अन्तर बहुत कुछ घट गया था। अत लोगो ने बुद्ध को अलग समझना छोड दिया और उन्हें राम और कृष्ण की तरह ही विष्णु का एक अवतार मानने लगे। इस मेल के फलस्वरूप पौराणिक हिन्दू-धर्म का विकास हुआ और बौद्ध-धर्म मिटता ही चला गया।

हिन्दुओं का बौद्ध-अवतार

हुए क बाद बौद्ध-धर्म म वज्रयान सम्प्रदाय के रूप म एक नयी विकृति पैदा हो गयी। इस सम्प्रदाय का प्रसार विहार से आसाम तक था। वज्रयान सम्प्रदाय के बौद्ध-तान्त्रिको में वामाचार का बहुत प्रचार था। ये बौद्ध तान्त्रिक 'सिद्ध' कहलाते थे। कहा जाता है कि सिद्धो मे चौरासी सिद्ध हुए हैं। चौरासी सिद्धो में नाथपथी गोरखनाथ भी माने जाते हैं। किन्तु बौद्ध वज्रयानियो की तरह इनके पथ में अश्लील-वामाचार को स्थान नही दिया गया है। ये सिद्ध या तान्त्रिक योगी अलौकिक शक्ति वाले समझे जाते थे। नालन्दा और विक्रम-शिला के विहार इनके मुख्य अड्डे थे। १२ वी शताब्दी के अन्त में बख्तियार खिलजी ने जब नालन्दा और विक्रमशिला पर आक्रमण करके उन्हे उजाड दिया, तब ये सिद्ध तितर-बितर हो गये और बहुत से भारत को छोडकर तिब्बत, भोट आदि स्थानो को चले गये। नि सन्देह मुस्लिम-आक्रमणो से बौद्धधर्म पर बहुत आघात पहुचा।

वज्रयान सम्प्रदायके वामाचार के कारण भी बौद्धधर्म की बहुत बडी हानि हुई। क्योंकि इसके कारण लोगों की श्रद्धा उस धर्म पर से बहुत कम हो गयी। इस के अलावा शैव और शाक्तधर्म की कुछ शाखाओं मे तान्त्रिक मत का प्रचार होने के कारण वज्रयानियो और शैवो के बीच म कोई खास भेद भी न रह गया था।

धार्मिक विकृति के अलावा बौद्धो में सामाजिक बुराइया भी घुस आयी, जिससे उनका सर्वनाश होना और भी जरूरी

अवतार भी कहा जाता है। उन्होंने बौद्धधर्म के अनेक अच्छे सिद्धांतों को भी अपना लिया था, इसलिए उन्हें 'प्रच्छन्न बौद्ध' (छिपे बुद्ध) भी कहा जाता है।

शंकराचार्य कोरे दार्शनिक या विचारक ही न थे, बल्कि एक सुधारक भी थे। जीवन भर भारत में घूम-घूम कर वे अपने मत का प्रचार करते रहे। उनमें संगठन करने की अद्भुत शक्ति थी। अपने धर्म के संगठन को बनाये रखने के लिए उन्होंने भारत के चारों कोनों में शृंगेरी (मैसूर), द्वारका (काठियावाड़), पुरी (उड़ीसा), और हिमालय की बर्फीली चोटी पर बद्रीनाथ (गढ़वाल) के प्रसिद्ध चार मठों की स्थापना की थी।

पौराणिक धर्म का ह्रास और मूर्तिपूजा

गुप्तकाल में पौराणिक हिन्दू धर्म ने खूब उन्नति की। लोगों में उस समय देवताओंके प्रति शुद्ध भक्ति भावना थी। यह भक्ति भावना लोगों के जीवन को ऊंचा करने और सजग बनाने में बहुत सहायक हुई। लेकिन राजपूत-काल में पहुंच कर पौराणिक हिन्दू-धर्म में आडम्बर ही अधिक हो चला था। सुन्दर-सुन्दर मन्दिर बनाना, देवताओं का साज-शृंगार करना और उन्हें हर प्रकार से खुश रखने का प्रयत्न करना, यही लोगों ने अपना मुख्य धर्म समझ लिया था। कहते हैं, सोमनाथ के मन्दिर में १००० ब्राह्मण पूजा करते थे और ५०० नर्तकियां तथा २०० गायक सोमनाथ के सामने नाचा-गाया करते थे। इस आडम्बर और प्रपंचपूर्ण भक्ति के कारण ही लोगों

में अन्ध-भक्ति या अन्ध-विश्वास चरम पर गया था। महमूद गजनवी जब सोमनाथ पहुंचा तो वहां के लोग और मन्दिर के पुजारी यही विश्वास करते रहे कि देव-सोमनाथ तुर्कों को एक पल में नष्ट कर देंगे। ऐसे अन्ध-भक्तों को यदि पराजय सहनी पड़ी तो क्या आश्चर्य ?

इस अन्ध-विश्वास के साथ-साथ बौद्धधर्म के वज्रयानी पंथ की तरह शैव तथा शाक्त-धर्म की कुछ शाखाओं में भी तान्त्रिक-धर्म और अश्लील वामाचार का प्रचार बढ़ गया था। इन तान्त्रिकों के जीवन का मुख्य ध्येय 'सिद्धि' प्राप्त करना था।

भक्ति-मार्ग

अन्ध-विश्वास और वामाचार के फैल जाने पर भी इस काल में कुछ ऐसे सुधारक पैदा हुए जिन्होंने हिन्दू-धर्म को बिलकुल विकृत होने से बचा लिया और अन्ध-भक्ति की जगह विशुद्ध-भक्ति-भावना का प्रचार करके समाज को ऊंचा उठाने का हर प्रकार से यत्न किया। ये सुधारक ज्यादा-तर वैष्णव और शैव सन्तों के रूप में प्रकट हुए।

१२ वीं शताब्दी में दक्षिण में वैष्णव धर्म के सब से महान् प्रचारक रामानुज हुए। उन्हें चोल राजा कुलोत्तुंग प्रथम के भय से चोल-राज्य को छोड़कर होयसल राजा के यहां मैसूर जाना पड़ा था। रामानुज ने विष्णु को मोक्षदाता और सर्व-शक्तिमान घोषित किया। उन्होंने बतलाया कि सभी जाति और वर्ग के लोग विष्णु की भक्ति से इस संसार के दुःखों को पार कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। १४वीं या १५वीं श॰

मे उनके इस वैष्णव-धर्म का रामानन्द ने उत्तरी भारत में बहुत प्रचार और प्रसार किया। रामानुज ने शकर के अद्वैतवाद को ठीक न बतलाकर, भक्ति के सिद्धान्त पर जोर दिया। उनके वैष्णव-मत को मानने वाले 'श्री वैष्णव' नाम से प्रसिद्ध हुए। शकर के अद्वैतवाद की अपेक्षा वैष्णव-धर्म के प्रेम और भक्ति मार्ग को जनता ने अधिक अपनाया। १२वी शताब्दी में बगाल के सेन राजा लक्ष्मण सेन के राजकवि ने गीतगोविन्द लिखकर, राधा-कृष्ण की प्रेम कहानी के रूप में भक्ति-भावना का अद्भुत प्रचार किया।

वैष्णव सतो की तरह तामिल और कर्नाटक प्रदेश में शैव सतो ने भी शैव-धर्म का प्रचार किया। १२वी शताब्दी मे शैव सतो में बासव बहुत प्रसिद्ध सुधारक हुए। रामानुज ने जिस तरह विष्णु को सर्वशक्तिमान और मोक्षदाता बतलाया, उसी तरह बासव ने शिव को। बासव का भी कहना था कि प्रत्येक जाति और वर्ग का आदमी शिव की भक्ति द्वारा मोक्ष पा सकता है। बासव के मत के मानने वाले वीरशैव या लिंगायत के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन वैष्णव और शैव सुधारको के प्रचार से भी बौद्ध-धर्म को बहुत धक्का लगा और बुद्ध के बजाय लोगो में विष्णु और शिव की भक्ति ने जोर पकड लिया।

कला और साहित्य

इस काल (७००–१२०० ई०) मे वास्तुकला की बहुत उन्नति हुई। इस समय सारे भारत में विभिन्न वशो के राजाओ ने जगह-जगह देव-मन्दिरो का निर्माण कराया। इन मन्दिरो

के निर्माण मे दिल खोलकर रुपया व्यय किया गया। यही कारण है कि देश-भर मे इस समय के बने अनेक मन्दिर आज भी विद्यमान है और कला की दृष्टि से अनुपम और अद्वितीय हैं। महमूद गजनवी ने जब मथुरा पर आक्रमण किया था, तो वहां के मन्दिरों की शोभा को देखकर उसका कठोर हृदय भी पिघल गया था; लेकिन धार्मिक उन्माद में मत्त होकर उसने कला की उन अनुपम कृतियो को ढाह कर ही चैन लिया।

मन्दिर बनाने की शैलिया विशेषतया दो प्रकार की थी। उत्तरी भारत में जो मन्दिर बने उनके शिखर सूची के आकार के बनाये जाते थे, लेकिन दक्षिण के मदिरो के शिखर कई खडो मे बनाए जाते थे जिस कारण शिखर के भिन्न-भिन्न खण्ड अटारियो की भांति एक के ऊपर एक रखे हुए से प्रतीत होते है। उत्तरी भारत के मन्दिरो की शैली को आर्य-शैली कहा जाता है और दक्षिण के मन्दिरो की शैली को द्रविड-शैली नाम दिया गया है।

आर्य-शैली

आर्य-शैली के मन्दिरो के सब से अच्छे नमूने भुवनेश्वर (उडीसा) और खजुराहो (मध्य-भारत) के मन्दिर हैं। इन मन्दिरो मे बहुतो पर नीचे से लेकर ऊपर तक बहुत सुन्दर खुदाई का काम किया गया है, जो देखने में बहुत भव्य मालूम होता है। भुवनेश्वर का लिंगराज और राजारानी के मन्दिर बहुत ही सुन्दर हैं।
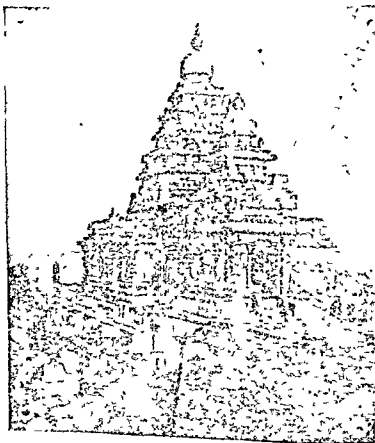
मामल्लपुरम् का एक शिवमन्दिर

बहुत प्रसिद्ध है। श्रीरगम्, रामेश्वरम् आदि स्थानोके मन्दिर भी बहुत भव्य, विशाल और मन को मुग्ध करने वाले हैं।

पल्लव और द्रविड-शैली के शिखर जावा, कम्बोडिया और अनाम के मन्दिरो मे भी पाये जाते है।

वास्तुकला की तरह इस युग की मूर्तिकला भी बहुत उन्नत थी। इस युग की मूर्तिया सर्वांग सुन्दर है, लेकिन गुप्त युग की मूर्तियो के समान भाव और ओज इस युग की मूर्तियों मे नही मिलता।

दक्षिण भारत में बनी नटराज शिव की कासे की मूर्तिय इस युग की मूर्तिकला के सर्वोत्कृष्ट नमूने है। उत्तर भारत में ब्राह्मण और बौद्ध देवी-देवताओ की जो पत्थर अथवा धातु की मूर्तिया मिली है, वे भी बहुत सुन्दर और भाव पूर्ण है। कला के इस इतिहास से स्पष्ट है कि भारतवर्ष की सभ्यता और सस्कृति तब कितनी उन्नत, विशाल और महान थी। अत. प्राचीन और मध्यकालीन भारत के राष्ट्रीय जीवन और भावो को समझने के लिए उस समय की कला और साहित्य को समझना बहुत आवश्यक है।

साहित्य

गुप्त-युग में सस्कृत साहित्य और विद्या की काफी उन्नति हो चुकी थी। उसके बाद भी सस्कृत साहित्य के निर्माण का कार्य जारी रहा। मध्ययुग के प्रसिद्ध कवियों में सब से ऊचा स्थान भवभूति का है, जो कन्नौज के राजा यशो

वर्मा के राजकवि थे। उत्तर राम-चरित और मालती-माधव नाटक इन की सर्वोत्कृष्ट रचनाएं हैं। प्रतिहार सम्राट महेन्द्रपालका गुरु और राजकवि राजशेखर का कर्पूरमंजरी नाटक (प्राकृत में) एक प्रसिद्ध रचना है। भारवी और माघ भी मध्य-युग के महान कवियों में हुए हैं। भारवी का किरातार्जुनीय और माघ की रचना शिशुपाल-वध बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक कवि और नाटककार इस युग में हुए। १२ वीं शताब्दी में बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के राज-कवि जयदेव ने गीत-गोविन्द लिखा जो संस्कृत साहित्य में गीति-काव्य की एक अनूठी रचना मानी जाती है। कथा साहित्य में दण्डी का दशकुमार-चरित और सोमदेव का कथा-सरित-सागर बहुत ही विख्यात है।

दर्शन के क्षेत्र में भी शंकराचार्य और रामानुजाचार्य आदि महान् दार्शनिक और विचारक हुए।

इस युग की एक विशेषता इतिहास के ग्रन्थों की रचना रही है। विक्रमांक-चरितके रचयिता विल्हण और काश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी के रचयिता कल्हण इसी युग में हुए।

प्रसिद्ध स्मृतिकार विज्ञानेश्वर भी इसी काल में हुए। उनकी मिताक्षरा नाम की टीका आज भी हिन्दू कानून की एक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है। ज्योतिष, गणित, आय-

वेद, कामशास्त्र और सगीतशास्त्र आदि पर भी इस काल में अनेक ग्रथ रचे गये ।

इस युग के अनेक राजपूत राजा स्वय भी विद्वान और प्रतिभाशाली ग्रन्थकार हुए हैं। इन राजाओ मे धारा का राजा भोज और चालुक्य राजा सोमेश्वर तृतीय आदि प्रसिद्ध हैं। इन राजाओ ने विविध विषयो पर कई सुन्दर ग्रन्थ लिखे हैं। लेकिन इस युग मे मौलिक ग्रन्थ बहुत कम लिखे गये ।

इस समय के विद्वान प्राचीन शास्त्रो की टीका करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे । इसी कारण भारतीय विचार और विज्ञान् की प्रगति रुक चली और जहा तक हम बढ आये थे, उससे आगे नही जा सके।

नालन्दा और विक्रमशिला के विहार इस समय के प्रमुख विद्या-केन्द्रो में से थे। नालन्दा विहार तो गुप्त और हर्ष के युग से ही जगत-प्रसिद्ध था। इन विहारो मे देश-विदेश से विद्यार्थी शिक्षा पाने के लिए आया करते थे ।

इस युग की एक विशेषता यह भी थी कि सस्कृत और प्राकृत के अलावा देशी-भाषाओ जैसे हिन्दी, तामिल और तेलगु आदि में साहित्य का सृजन होने लगा था। ८४ सिद्धो के गीत और दोहे हिन्दी की प्राचीनतम काव्य–भाषा मे लिखे गये हैं। हिन्दी कविता का यही से श्रीगणेश होता है। १२ वीं शताब्दी से राजपूत भाट व चारणो ने भी हिन्दी में राजपूत राजाओ की प्रशसा में काव्य-रचना आरभ कर दी थी।

शासन व्यवस्था

इस युग में राजा सर्वेसर्वा था। वह न्याय का प्रमुख अधिष्ठाता था। प्राचीन काल के राजाओ की तरह इस युग में भी राजा अपना प्रमुख कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा और पालन समझते थे। यह सिद्धान्त कि राजा अपने लिए नही प्रजा के लिये है, इस युग में भी माना जाता था। सुशासन के लिए जिस प्रकार गुप्त-सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और पुष्यभूति सम्राट हर्ष प्रसिद्ध है, उसी तरह राजा भोज का नाम इस युग के राजाओ मे विख्यात है। सुबुक्तगीन और महमूद गजनवी से लोहा लेने वाले ओहिन्द के ब्राह्मण-शाही राजा भी अपने सुशासन, देश-प्रेम तथा सत्यनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध है। उत्तरी और दक्षिणी भारत के अन्य वशो में भी अनेक सुशासक हुए है।

इस काल के राजा प्रधान न्यायाधीश होने के साथ-साथ राज्य के प्रधान सेनापति भी होते थे। देश की रक्षा का भार उन्ही पर होता था। इसलिए शत्रुओ के आक्रमण के समय वे स्वय सेना लेकर रणक्षेत्र में जाया करते थे। शासन में सहायता देने के लिए मत्री और अन्य उच्चाधिकारी होते थे। ग्राम शासन के लिए ग्राम-पचायतें थी। पचायतो का निरीक्षण करने के लिए सरकार की तरफ से अधिकारी नियुक्त रहते थे। चोल राज्य की ग्राम-पचायतें बहुत ही व्यवस्थित थीं। शासन के सुभीते के लिए साम्राज्य भुक्ति या प्रान्त तथा विषय या जिलो आदि में बटा रहता था। प्रजा से अधिक कर नहीं

लिया जाता था। उपज का १।६ भूमि-कर के रूप मे लिया जाता था।

इस युग के राजा केवल वीर, योद्धा, और सुशासक ही नही थे, वरन् उनमे से अनेक ऐसे थे जो विद्या व कला के महान् उपासक होने के साथ साथ स्वय भी विद्वान व कलाकार थे। धारा का राजा भोज, कल्याणी का चालुक्य राजा सोमेश्वर तृतीय, मान्यखेट का राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष, बगाल का राजा बल्लाल सेन आदि स्वय बहुत प्रतिष्ठित विद्वान और कवि थे।

इस युग की सेना के मुख्य अग हाथी, पैदल और घोडे थे। रथ-सेना का प्रचलन बन्द सा हो चला था। राजपूताने के राजे ऊट भी रखते थे। चोल राजाओ की सेना का मुख्य अग नौ-सेना भी थी। घोडो की कमी के कारण घुडसवार सेना कम होती थी। स्थायी सेना के अलावा युद्ध के समय राजा अपने सामन्तो की सेना से भी काम लिया करते थे।

सामाजिक अवस्था

जात-पात के भेद इस युग मे बढ चले थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो मे अनेक उपजातिया पैदा हो गयी थी। अछूत और चाडाल सबसे नीचे समझे जाते थे। गोत्र के अलावा स्थान-भेद से भी ब्राह्मणो मे कई जातिया बन गयी थी।

इसी प्रकार क्षत्रियो मे चन्द्रवशी और सूर्यवशी के अलावा ३६ नयी जातिया पैदा हो चुकी थी। जात-पात के नियम भी अब कडे होते चले जा रहे थे। विभिन्न जाति के लोगो मे विवाह और खान-पान बन्द होने लगा था।

स्त्रियाँ

स्त्रियों का समाज में आदर और मान था। वे सामाजिक कार्यों में भाग ले सकती थीं। गुप्त-युग की तरह इस युग में भी अनेक राजघरानों की स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी होती थीं। लड़कियों को नृत्य और संगीत की शिक्षा भी दी जाती थी। पर्दे का रिवाज बहुत कम था।

विवाह विशेषतया सयानी होने पर होता था। लेकिन धीरे-धीरे बाल-विवाह की प्रथा अपने पैर जमा रही थी। स्वयंवर प्रथा का प्रचलन अब भी था। विधवा-विवाह नहीं हो सकता था। पुरुष एक से अधिक विवाह कर सकते थे। सती प्रथा का प्रचार भी बढ़ रहा था।

हिन्दुओं का दुर्गुण

कला, साहित्य और विज्ञान में हर प्रकार से उन्नत होने पर भी इस युग के हिन्दुओं में एक बहुत बड़ा दुर्गुण भी था। अल्बेरुनी ने लिखा है कि हिन्दू लोग अपनी जाति वाले के सिवाय किसी को अपने ज्ञान का रहस्य नहीं बतलाया करते। अपने अहङ्कार के कारण वे अपने देश के सिवा किसी दूसरे देश को सभ्य भी नहीं समझते। उनका यह भी विश्वास है कि उन के सिवाय दुनिया में कोई कुछ जानता ही नहीं है। अल्बेरुनी के अनुसार इस दुर्गुण का कारण हिन्दुओं की संकुचित मनोवृत्ति थी। उन ने लिखा है कि यदि ये लोग भी अपने पूर्वजों की तरह उदार और दूर-देशों में भ्रमण करनेवाले होते तो उन के विचार इस तरह से संकुचित नहीं हो सकते थे। निःसन्देह अपने इन

संकुचित विचारों के कारण हिन्दुओं को काफी नुकसान उठाना पड़ा। इस संकुचित मनोवृत्ति और ज्ञानका आदान-प्रदान रुक जाने के कारण ही विचारों की प्रगति और प्रवाह भी रुक गया।

वृहत्तर–भारत

.प्राचीन काल की तरह इस युग में भी भारतीयों का वृहत्तर-भारत के उपनिवेशों के साथ संबंध बना रहा। दूसरी और पांचवी शताब्दी के बीच चम्पा, कम्बोज, सुमात्रा, जावा, बालि, बोर्नियो आदि में जो अनेक हिन्दू-राज्य कायम हुए थे, उन में से अनेक इस युग में भी शक्तिशाली थे।

इस युग में चम्पा और कम्बोज के राज्य बहुत शक्तिशाली थे। चम्पा के हिन्दू राजाओं ने लगभग १३०० वर्ष (लगभग सन् १५०–१४७१ ई०) तक गौरव के साथ राज्य किया। उन के शासन काल में चम्पा में अनेक हिन्दू और बौद्ध–मन्दिरों का निर्माण हुआ था।

कम्बोज का हिन्दू–राज भी पहली या दूसरी शताब्दी में कायम हुआ था। इस राज्य को चीनी फू-नान कहते थे। फू-नान राज्य के सामन्त प्रदेश कम्बोज देश के राजा ने छठी शताब्दीमें कम्बोज राष्ट्र की स्थापना की। यह कम्बोज-राष्ट्र चम्पा से भी अधिक शक्तिशाली था। जयवर्मन, यशोवर्मन और सूर्यवर्मन यहा के प्रसिद्ध राजा हुए हैं। १५ वीं शताब्दी में इस राष्ट्र का ह्रास हो गया। ९ वीं शताब्दी मे यशोवर्मन ने यशोधरपुर नाम से नयीराजधानी बसायी, जो उस समय दुनिया के सब से सुन्दर

नगरो में गिनी जाती थी। इस नगर को अब अंकोरयोम कहते हैं। कम्बोज राजाओ ने भी अनेक सुन्दर हिन्दू-मन्दिरो का निर्माण कराया था।

इन दो राज्यो के अलावा शैलेन्द्र-वंश का राज्य भी बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस राज्य की स्थापना ८ वी शताब्दी मे हुई थी। इस राज्य मे मलाया प्रायद्वीप तथा सुमात्रा, जावा, बालि और बोर्नियो के द्वीप शामिल थे। ये राजा बहुत सम्पन्न और उदार थे। ये महायान बौद्धधर्म को मानते थे। इन का बनवाया हुआ बोरोबुदुर मन्दिर जगत् प्रसिद्ध है।

राजेन्द्र चोल ने आक्रमण करके ११वी शताब्दी मे इस राज्य को भारी हानि पहुँचायी और इसके बहुत बडे हिस्से पर अधिकार कर लिया था। इस समय से ही शैलेन्द्रो की शक्ति घटने लगी और १३ वी शताब्दी में उनका राज्य समाप्त हो गया।

बृहत्तर भारत के इस विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल से लेकर मध्य-युग तक इन द्वीपो में हिन्दू और बौद्ध राजा शासन करते रहे जिन्होने वहा पर भारतीय संस्कृति और धर्म का बडे उत्साह और अनुराग के साथ प्रचार किया। भारत के औपनिवेशिक और सांस्कृतिक प्रसार का नि:सन्देह यह स्वर्ण युग था, जिस पर भारतीय गर्व कर सकते है। किन्तु ११ वी शताब्दी के बाद बृहत्तर भारत से हिन्दू और बौद्ध-धर्मो का ह्रास होना शुरू हो गया और अन्त में वहा इस्लाम ने पैर जमा लिये। केवल बालि द्वीप में आज भी हिन्दू-धर्म वर्तमान है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—बौद्ध-धर्म के पतन के क्या कारण थे ?

२—कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य कौन थे ?

३—रामानुज के बारे में आप क्या जानते हैं ?

४—पूर्व-मध्यकाल में कला और साहित्य की कैसी उन्नति हुई थी ?

५—इस युग के बने कौन-कौन से मन्दिर प्रसिद्ध हैं ?

६—इस समय के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

७—वृहत्तर भारत के साथ इस युग में हमारा कैसा सम्बन्ध था ?

८—चम्पा और कम्बोज के राज्यों का वर्णन करिये।

अध्याय ६

तुर्क सल्तनत की स्थापना

मुहम्मद गोरी

पिछले अध्याय में कह चुके हैं कि गोर के शासक गयासुद्दीन मुहम्मद ने गजनी पर अधिकार करके अपने भाई शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी को वहां का शासक नियुक्त किया था। इन दोनों भाइयों में परस्पर बहुत प्रेम था। अपने आक्रमणों के कारण शहाबुद्दीन भारत के इतिहास में भी प्रसिद्ध हो गया है। लेकिन महमूद गजनवी की तरह उसके आक्रमण केवल लूट पाट तक ही सीमित न थे। उसने भारतीय प्रदेशों को विजय करके यहां पर तुर्क सल्तनत भी कायम की। अपने भाई की तरफ से जब वह गजनी का शासक बना था, तभी से उसने भारत पर आक्रमण शुरू कर दिये थे।

प्रारम्भिक विजय

मुहम्मद गोरी ने सबसे पहले सन् ११७५ में मुलतान और उच्च पर अधिकार किया।

सन् ११७८ में उसने भारत के भीतर घुमने की इच्छा स मुलतान के रास्ते से गुजरात की राजधानी अनहिलवाडा पर आक्रमण किया किन्तु उसे गुजरात के राजा मूलराज द्वितीय की सेना से बुरी तरह हार कर भाग जाना पडा ।

पंजाब, अजमेर और दिल्ली की विजय

लेकिन गुजरात की हार से मुहम्मद गोरी का साहस नही घटा । इस हार के दूसरे ही वर्ष यानी ११७९ई०म उसने पेशावर पर अधिकार कर लिया। जम्मू के राजा से मिलकर सन् ११८६ में उसने पजाब के गजनवी शासक खुसरो मलिक पर चढाई की। खुसरो मलिक लडाई मे हार गया और बन्दी बनाकर गजनी भेज दिया गया। इस प्रकार महमूद गजनवी का अतिम वंशज खतम हुआ और पजाब पर गोरी का अधिकार हो गया। पजाब हाथ में आ जाने पर मुहम्मद गोरी ने भारत के भीतर घुसने का प्रयत्न शुरू किया।

तरावडी का पहला युद्ध

पजाब के पडोस मे अजमेर और दिल्ली म महान् राजा पृथ्वीराज चौहान का राज्य था । अत पजाब से आगे बढने का सीधा अर्थ था पृथ्वीराज से लडाई मोल लेना। लेकिन गोरी को इस बात की चिन्ता न थी। सन् ११९१ में गोरी ने दिल्ली राज्य के अन्तर्गत भटिण्डा पर अधिकार कर लिया ।

मुहम्मद गोरी का सामना करने के लिये आगे बढा। थानेश्वर के पास तरावडी के मैदान में तुर्क और चौहान सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। मुहम्मद गोरी बुरी तरह से परास्त हुआ और भटिण्डा उसके अधिकार से निकल गया।

तरावड़ी का दूसरा युद्ध

किन्तु यह हार सह कर भी गोरी ने अपनी हिम्मत न हारी। दूसरे वर्ष सन् ११९२ में वह फिर एक भारी सेना लेकर पृथ्वीराज से लड़ने चला आया। इस बार भी तुर्क और चौहानों में तरावडी में ही युद्ध हुआ। राजपूतों की बहुत बुरी हार हुई। पृथ्वीराज कैद हुआ और मार डाला गया।

पृथ्वीराज को हराने के बाद मुहम्मद गोरी ने अजमेर पर आक्रमण किया। अजमेर को लूटने-खसोटने के बाद उसने पृथ्वीराज के ही एक लड़के को वहां का शासक नियुक्त किया। शेष भारतीय प्रान्तों को जीतने का कार्य अपने प्रिय गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंप कर मुहम्मद गोरी स्वयं गजनी को लौट गया। ऐबक को उसने अपने भारतीय प्रान्तों का शासक भी नियुक्त किया।

दिल्ली पर अधिकार

ऐबक ने ११९२–११९३ ई० के भीतर हांसी, मेरठ, दिल्ली और कोइल (अलीगढ) पर अधिकार कर लिया और दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया।

जयचन्द की पराजय

सन् ११९४ मे मुहम्मद गोरी फिर सेना लेकर कन्नौज पर आक्रमण करने के लिए आया। कन्नौज का गहडवाल राजा जयचन्द गोरी का सामना करने के लिए आगे वढ़ा। चदावर (इटावा के पास) मे दोनो दलो में मुठभेड हुई। जयचन्द हारा और युद्ध मे मार डाला गया। इस जीत के वाद विजेता सीधे बनारस तक जा पहुचे। किन्तु जयचन्द के हारने के वाद भी उसके लडके हरिश्चन्द्र ने तुर्कों की प्रभुता स्वीकार न की और आखिरी दम तक (लगभग सन् १२०२) कन्नौज को हाथ से न जाने दिया। सन् ११९६ मे मुहम्मद ने ग्वालियर के राजा पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन किया।

गुजरात और कालिंजर पर चढ़ाई

मुहम्मद गोरी के गजनी चले जाने पर ऐबक ने विजय का काम जारी रखा। उसने अजमेर के लिए एक मुसलमान शासक नियुक्त किया। सन् ११९५ और ११९७ में दो वार उसने गुजरात पर चढाइया की और वहा के राजा भीमदेव को हराकर अनहिलवाडा को लूटा। सन् १२०२ में उसने कालिंजर के राजा परमाल को पराम्त किया और महोबा, कालपी तथा वदायू पर भी अधिकार कर लिया। किन्तु ऐबक के मुह फेरते ही कालिंजर फिर स्वतन्त्र हो गया।

बिहार और बंगाल पर तुर्क आक्रमण

जिस समय कुतुबुद्दीन ऐबक इन विजयो में लगा हुआ था, उसी बीच एक दूसरा तुर्क सेनापति मुहम्मद-वख्तियार

थे। लखनौती के पतन के बाद सेन राजा ढाका के पास सोनार गाव (सुवर्ण ग्राम) को राजधानी बनाकर लगभग १३ वीं शताब्दी के अन्त तक पूर्वी और दक्षिणी बगाल पर शासन करते रहे।

मुहम्मद गोरी का अन्त

सन् १२०५ में झेलम और चिनाव के बीच में रहने वाली खोखर जाति ने विद्रोह करके लाहौर को लूट लिया। इस विद्रोह को दवाने के लिए मुहम्मद गोरी तुरन्त गजनी से चल दिया। दिल्ली से ऐबक भी गोरी की मदद के लिये आगे बढा। दोनों ने मिलकर बुरी तरह से खोखरो को रौद डाला।

लेकिन इस विद्रोह को दवाने के बाद सन् १२०६ मे जब मुहम्मद गोरी गजनी लौट रहा था, तभी रास्ते में उसे किसी धर्मांध मुसलमान या खोखर ने मार डाला।

यद्यपि मुहम्मद गोरी को महमूद गजनवी के समान कुशल सेनापति नही माना जा सकता, लेकिन इतना निश्चित है कि उनके भारतीय-आक्रमण साम्राज्य स्थापना की पक्की योजना को लेकर हुए थे। इसीलिए उसकी विजय महमूद की विजयो से अधिक व्यवस्थित और स्थायी सिद्ध हुई। उसकी और उसके कृपापात्र गुलाम ऐबक की विजयो के परिणाम स्वरूप ही भारत में सर्वप्रथम तुर्क सल्तनत कायम हुई।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—मुहम्मद गोरी कौन था ? उसके और पृथ्वीराज के बीच कितने युद्ध हुए ? उनका परिणाम क्या हुआ ?

२—लखनौती में तुर्क सल्तनत कैसे कायम हुई ?

३—पृथ्वीराज के बाद मुहम्मदगोरी ने दूसरे किस बड़े राजपूत राजा को पराजित किया था ?

४—उसकी विजयों में सहायता देनेवाला उसका प्रमुख सेनापति कौन था ? उसने कौन-कौन से देशों को जीता ?

अध्याय ७

गुलाम-वंश (१२०६-१२९०)

कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६–१२१०)

मुहम्मद गोरी ने अपने कृपा-पात्र गुलाम और विश्वस्त सेनापति कुतुबद्दीन ऐबक को भारतीय प्रान्तों का सूबेदार बनाया था। अतः मुहम्मद गोरी की मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी ने भी ऐबक को दिल्ली का शासक स्वीकार किया। ऐबक ने सुलतान की उपाधि धारण की और दिल्ली का प्रथम स्वतंत्र शासक बना। चूंकि वह पहले अपने अधिपति गोरी का गुलाम रहा और उसके बाद भी जो शासक हुए, वे प्रारम्भ में अपने अधिपतियों के गुलाम रहे, इसलिए इन तुर्क-सुलतानों को गुलाम-वंश का कहा जाता है। उसके सुलतान पद को हिन्दुस्तान के तुर्क सरदारों और प्रान्तीय शासकों ने भी स्वीकार किया। केवल गजनी के तुर्क शासक यल्दुज ने ऐबक को सुल्तान स्वीकार न किया।

ऐबक साहसी सेनापति और सुयोग्य शासक था। अपनी योग्यता से ही वह दिल्ली में तुर्क साम्राज्य स्थापित कर सका।

इसलिए उसे तुर्की सल्तनत का वास्तविक संस्थापक कहा जा सकता है। वह एक न्याय-प्रिय शासक था और गरीबों को दिल खोलकर दान देता था। सन् १२१० ई० में लाहौर में चौगान खेलते समय घोड़े से गिरने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

इल्तुतमिश (१२१०–१२३६)

ऐबक का उत्तराधिकारी आरामशाह अयोग्य साबित हुआ। इसलिए दिल्ली के तुर्क सरदार और अमीरों ने बदायूं के शासक इल्तुतमिश को सुलतान बनाया। इस प्रकार अमीरों की मदद से इल्तुतमिश सन् १२१० में दिल्ली के तख्त पर बैठा। वह ऐबक का प्रिय-गुलाम और दामाद था।

उपद्रवों का दमन

दिल्ली में तुर्क सल्तनत स्थापित तो हो गयी, लेकिन अभी उसका संगठन बाकी था। एक तरफ प्रान्तीय तुर्क सरदार दिल्ली से स्वतन्त्र बनने की चेष्टा में थे; दूसरी ओर राजपूत राजा भी तुर्कों से अपने को मुक्त करने के लिए व्याकुल थे। अतः दिल्ली की सल्तनत को दृढ़ करने के लिए इल्तुतमिश को तुर्क सरदारों और राजपूत राजाओं से काफी युद्ध करना पड़ा।

सन् १२१६ में गजनी के तुर्क शासक इल्दुज ने लाहौर ले लिया और थानेश्वर तक बढ़ता चला आया। यह देखकर इल्तुतमिश फौरन सेना लेकर आगे बढ़ा और तरावड़ी के मैदान में उसने इल्दुज को हराकर कैद कर लिया और बाद में मरवा भी डाला।

इसी बीच सिंध और मुलतान के तुर्क शासक कुबाचा ने

इल्तुतमिश की परवाह न करके लाहौर पर कब्जा कर लिया। लेकिन सन् १२१७में इल्तुतमिश ने उसे भी लाहौर से मार भगाया। इस प्रकार सारा पंजाब इल्तुतमिश के अधिकार में आ गया। किन्तु कुबाचा को पूरी तरह से सन् १२२८ में दबाया जा सका। इस साल इल्तुतमिश ने उसे हराकर सिंध और मुलतान को दिल्ली की सल्तनत में मिला लिया। कहते हैं, भागते समय कुबाचा सिंधु नदी में डूब कर मर गया।

मंगोलों का भय

इल्तुतमिश के समय में भारत पर मंगोल-आक्रमण का भय भी उत्पन्न हो गया था। सन् १२२१ में ख्वारिज्म (खीवा) के शाह का पीछा करता हुआ चंगेज खां भारत की सीमा तक आ पहुंचा था। सिंध और पंजाब में इससे बहुत खलबली मची। इल्तुतमिश की सल्तनत पर यह बड़ा भारी खतरा था। लेकिन इल्तुतमिश के भाग्य से चंगेज खां सिंधु नदी को पार किये बिना ही लौट गया और हिन्दुस्तान मंगोलों के भयानक आक्रमण से बच गया।

बिहार और बंगाल

मुहम्मद बख्तियार की मृत्यु के बाद अली मर्दान खिलजी बंगाल का स्वतंत्र शासक बन गया था। तब से वहां के खिलजी शासक दिल्ली के खिलाफ विद्रोह करते रहते थे। इल्तुतमिश ने पंजाब और सिंध के दमन के बाद बिहार और बंगाल को भी अपने अधिकार में कर लिया। सन् १२३०–३१ में उसने बंगाल के विद्रोही खिलजी शासक ईवाज के लड़के

वल्का को समाप्त कर अलाउद्दीन जानी को वहा का शासक नियुक्त किया।

अन्य-विजय

तुर्क विद्रोहियों का दमन करने के साथ-साथ इल्तुतमिश ने विद्रोही हिन्दू राजाओं को भी दबाया। सन् १२२६ में उसने रणथम्भोर के दुर्ग पर अधिकार किया। उसी साल उसने सिवालिक में मण्डावर (बिजनौर जिला) के दुर्ग पर भी कब्जा किया।

बगाल के विद्रोह को दबाने के बाद सन् १२३२ में उसने ग्वालियर के राजा को हराकर फिर से वहा पर अपना अधिकार स्थापित किया।[१]

उत्तरी भारत के प्रान्तों पर अधिकार करने के बाद उसने अन्य राजपूत राज्यों का जीतने का उपक्रम किया। उसने मालवा पर आक्रमण करके भेल्सा और उज्जैन को लूटा और वहा से बहुत-सी धन-दौलत लेकर दिल्ली लौट आया।

सन १२३६ में वह खोखरों का विद्रोह दबाने के लिए पंजाब की ओर बढा लेकिन मार्ग में बीमार पड़ जाने से दिल्ली लौट आया और थोड़े दिन बाद मर गया। मरते समय अपने उत्तराधिकारी के रूप में वह अपनी लड़की रजिया को मनोनीत कर गया।

इल्तुतमिश ने बड़ी योग्यता और कुशलता के साथ २६ वर्ष शासन किया। ऐबक की मृत्यु के बाद दिल्ली सल्तनत की हालत बहुत चिंताजनक हो गई थी। तुर्क अमीरों व सरदारों

की महत्वाकांक्षा तथा राजपूत राजाओं के विद्रोहों के कारण दिल्ली की प्रथम तुर्क सल्तनत खतरे में पड़ गयी थी। लेकिन इल्तुतमिश ने सारे विद्रोहों को दबाकर तुर्क साम्राज्य को मिटने से बचा लिया। उसने तुर्क सल्तनत को सुदृढ़ और सुसंगठित कर दिया। अतः यदि ऐबक तुर्क सल्तनत का सस्थापक था, तो इल्तुतमिश उसका संगठनकर्त्ता माना जायगा। संगठन की इस योग्यता के कारण ही वह गुलाम वंश के राजाओं में सर्वश्रेष्ठ और योग्य माना जाता है।

वह साहित्य और कला का भी प्रेमी था। कहते हैं, दिल्ली की प्रसिद्ध कुतुब-मीनार उसी ने बनवाई थी। उस की योग्यता और धार्मिकता से प्रसन्न होकर बगदाद के खलीफा ने भी उसे हिन्दुस्तान का सुल्तान स्वीकार किया था।

सुलताना रजिया बेगम (१२३६–१२४०)

अपने लड़कों को अयोग्य समझकर ही इल्तुतमिश ने अपनी बेटी रजिया को उत्तराधिकारी चुना था। किन्तु अभिमानी तुर्क अमीरों और प्रान्तीय शासकों को एक स्त्री का शासन अपमान-जनक मालूम दिया। इसलिए उन्होंने रजिया के बजाय उसके अयोग्य भाई रुक्नुद्दीन फीरोज को गद्दी पर बैठाया। किन्तु अयोग्य और अत्याचारी होने से, वह छ महीने के भीतर ही अमीरों द्वारा मार डाला गया। तब रजिया दिल्ली के तख्त पर आसीन हुई। लेकिन बहुत से तुर्क अमीर और प्रान्तों के शासक रजिया के खिलाफ विद्रोही बने ही रहे। रजिया घबरानेवाली औरत न थी। उसने दृढ़ता के साथ
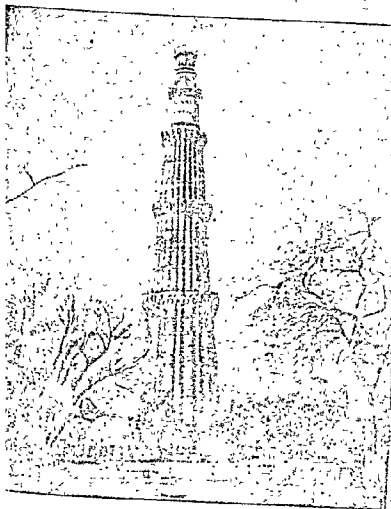
कुतुब मीनार

शासन करना शुरु किया। वह योग्य और कुशल शासक थी। बिना बुर्का ओढ और मर्दाने कपडे पहन कर वह दरबार में आती थी। सेना का नेतृत्व भी वह स्वय करती थी। याकूत नाम के एक हब्शी को उसने अपना कृपापात्र भी बना लिया था। तुर्क अमीर और विशेष कर इल्तुतमिश के चालीस तुर्क गुलामो को रजिया की ये बात बहुत बुरी लगी। अत. चालीस गुलामो के शक्तिशाली गुट ने उसके विरुद्ध षडयन्त्र शुरु कर दिये। उन्होंने याकूत को मार डाला और रजिया को कैद करके भटिण्डा के शासक अल्तूनिया को सौंप दिया। लेकिन रजिया ने होशियारी से अल्तूनिया को वश मे कर उससे शादी कर ली। तब दोनों मिल कर दिल्ली की ओर बढे। इस बीच चालीस गुलामो के गुट्ट ने इल्तुतमिश के एक और लडके बहराम को गद्दी पर बैठा दिया था। बहराम ने रजिया और उसके पति को हरा दिया (सन् १२४०)। इस पराजय के दूसरे दिन ही अपने पति सहित रजिया मार डाली गयी। इस प्रकार रजिया ने कुल ३ साल और कुछ महीने राज्य किया।

अराजकता और अशान्ति

रजिया की मृत्यु और बहराम के सुलतान होने के बाद भी दिल्ली मे शान्ति स्थापित न हो सकी। दो वर्ष बाद सन् १२४२ मे अमीरो ने असतुष्ट होकर बहराम को भी मार डाला। अमीरो ने तब रुक्नुद्दीन फीरोज के लडके मसऊद को सुल्तान बनाया। लेकिन सन् १२४६ मे अमीरो ने उसका भी खात्मा कर डाला और इल्तुतमिश के एक और लडके नासि-

रुद्दीन को तख्त पर बैठा दिया। दिल्ली सल्तनत के ये छ वर्ष इस प्रकार बहुत ही अशान्ति और अराजकता में बीते।

इस बीच दिल्ली सल्तनत की दशा बहुत बिगड़ गयी थी। सल्तनत की कमजोरी से लाभ उठा कर सन् १२४१ में मगोल लूट-मार करते हुए लाहौर तक चले आये थे। पंजाब में खोखर भी स्वतन्त्र हो बैठे थे। बगाल, बिहार, मुलतान और सिन्ध के प्रांत स्वतन्त्र हो चुके थे। मेवात (अलवर) के मेव राजपूतो ने तुर्क-सत्ता के विरुद्ध बगावत शुरू कर दी थी। अनेक हिन्दू राजा भी बगावती बन गये थे।

सन् १२४५ ई० म मगोलो ने फिर उच्च पर आक्रमण किया, लेकिन इस बार गयासुद्दीन बलबन ने उन्हे मार भगाया।

नासिरुद्दीन महमूद (१२४६-१२६६)

नासिरुद्दीन न २० वर्ष राज्य किया। वह स्वय इतना योग्य न था कि उस वक्त की उथल-पुथल म राज्य की बागडोर सभाल सकता। लेकिन उसका मन्त्री बहुत योग्य और कुशल व्यक्ति साबित हुआ। यह मन्त्री गयासुद्दीन बलबन था, जो २० वर्ष मन्त्री और २० वर्ष सुलतान के रूप में दिल्ली सल्तनत का भाग्य-विधाता बना रहा।

प्रारम्भ म बलबन इल्तुतमिश का गुलाम था। लेकिन अपनी योग्यता के बल पर वह ऊचे पद पर पहुच गया था। इल्तुतमिश न खुश होकर उस अपनी लड़की भी ब्याह दी थी। अपना सबध और घनिष्ठ करने के लिए बलबन ने बाद म अपनी लड़की का सुलतान नासिरुद्दीन से विवाह किया था। [illegible]

में राज्य का कार्य-भार सौंप कर नासिरुद्दीन स्वयं निश्चिन्त हो गया था।

बलबन ने बड़ी योग्यता और कुशलता से राजकाज चलाया। लटपटाती दिल्ली की सल्तनत को उसने सम्हाल लिया। इल्तुतमिश के कमजोर और अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण जो अव्यवस्था व अशान्ति फैल चुकी थी उसे भी उसने खत्म किया। उसने मंगोलों के आक्रमणों को रोका, विद्रोही सरदारों को दबाया और हिन्दू राजाओं के विद्रोह को भी कुचल दिया।

उसने पंजाब के खोखरों पर चढ़ाई की और उन्हें दबाया। इसके बाद उसने दोआब और मेवात के विद्रोही हिन्दुओं का दमन किया। रणथम्भोर पर भी बलबन ने चढ़ाई की पर सफल न हो सका। उसने चन्देरी, कालिंजर, ग्वालियर और मालवा पर भी चढ़ाइयां की और उन्हें लूटा-खसोटा।

मंगोलों के आक्रमण को रोकने के लिए बलबन ने सीमान्त के किलों को मजबूत कर वहां फौजें तैनात की।

बलबन ने विरोधी तुर्क सरदारों और बगावती प्रान्तीय शासकों का भी इसी तरह कठोरता से दमन किया।

सन् १२६६ में सुलतान नासिरुद्दीन की मृत्यु हो गया। मरते समय सुलतान बलबन को अपना उत्तराधिकारी चुन गया। दरबार के अमीर और सरदारों ने भी उसे सुलतान स्वीकार किया। इस प्रकार बलबन अब स्वयं सुलतान होकर दिल्ली के तख्त पर बैठा।

सुलतान गयासुद्दीन बलबन का शासन (१२६६-१२८६)

सुलतान बनने पर बलबन को शासन करने में और भी सरलता हुई। उस समय विद्रोह बहुत होते रहते थे, इसलिए उसने सबसे पहले सेना के संगठन को मजबूत किया। न्याय करने में वह निष्पक्षता से काम लेता था। अपराध करने पर वह बड़े-से-बड़े अमीर को भी कठिन दंड देने में नहीं हिचकता था। उसने विद्रोही और अवज्ञा करने वाले चालीस तुर्क सरदारों के गुट्ट को दबा कर रखा।

बंगाल के शासक तातार खाँ ने, जो अबतक स्वतंत्र बना हुआ था, बलबन को हाथी भेंट में भेज कर दिल्ली की अधीनता स्वीकार कर ली।

उपद्रवों का दमन

राज्य मे शान्ति स्थापित करने के लिए उसने जहा तहा सख्ती से विद्रोही का दमन किया। मेव और दोआबक हिन्दू अब तक विद्रोही बने हुए थे। मेव-राजपूत दिल्ली तक धावा मारने लगे थे। उनके भय से दिल्ली का पश्चिमी द्वार सन्ध्या से पहले ही बन्द कर देना पडता था। दिल्ली के आसपास का जगल मेव-राजपूतो का अड्डा बन गया था। अत उसने उन जगलो को साफ कराया और बहुत से मेवो-को मार डाला (सन् १२६६)।

दूसरे वर्ष बलबन ने दोआब और कटेहर के विद्रोही हिन्दुओ पर चढाई की और बहुत कठोरता के साथ उन्हे कुचल दिया। इसके बाद उसने पजाब क पहाडो म रहनेवाले विद्रोही हिन्दुओ का दमन किया और वहा से अपनी सेना के लिए बहुत से घोडे लाया।

मुगलों का आक्रमण

मुगलो के आक्रमण को रोकने के लिए बलबन ने लाहौर के दुर्ग को ठीक कराया और अपने लडके मुहम्मद को मुलतान का शासक नियुक्त किया। मुहम्मद एक योग्य और विद्या-प्रेमी राजकुमार था। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो ने अपना साहित्यिक जीवन उसी के दरबार में आरम्भ किया था।

सन् १२७९ में मगोलो ने सतलज को पार कर दिल्ली की ओर बढ़ना शुरु किया। मुहम्मद मुलतान से फौज लेकर उन्हें रोकने के लिए आगे बढा। इसी समय मगोलो का सामना करने के लिए दिल्ली और समाना से भी फौजो ने कूच किया।

मगोल इस बार बरी तरह से हारे और कुछ समय के लिए उनका खतरा टल गया।

तुगरिल खां का विद्रोह

इसी साल बगाल में भी विद्रोह हुआ। बगाल के पुराने सबेदार तातार खा को बलबन ने वहा से बुला कर पजाब का शासक बना दिया था और उसकी जगह तुगरिल खा को सुबदार नियुक्त किया था। लेकिन सन् १२७९ में तुगरिल खा न अपने को बगाल का स्वतन शासक घोषित कर दिया। उसे दबाने के लिए दो बार फौजें भेजी गयी और अन्त में बलबन को स्वय सेना लेकर लखनौती जाना पडा।

सुलतान का आगमन सुनकर तुगरिल लखनौती को छोड-कर उडीसा की ओर भाग खडा हुआ। बलबन भी उसका पीछा करता हुआ सोनार गाव (पूरबी बगाल) पहुचा। तुगरिल पकडा गया और उसका सिर काट डाला गया। लखनौती लौट कर बलबन ने तुगरिल के सबधियो और साथियो को शूली पर लट-कवा दिया। सुलतान ने तब अपने बेटे बुगरा खा को बगाल का सूबेदार नियुक्त किया और स्वय दिल्ली लौट आया (१२८२)।

मंगोल आक्रमण और बलबन का अन्त

बगाल की इस विजय का बल्बन अधिक दिन तक हर्ष न मना सका। बृद्ध सुलतान को सन् १२८५ में बहुत बडी विपत्ति का सामना करना पडा। इस वर्ष मगोलों ने पुन मुलतान पर

आक्रमण किया। बल्बन के योग्य बेटे मुहम्मद ने मंगोलों को तो हरा दिया, लेकिन स्वयं लड़ाई में मारा गया।

८० वर्ष के बूढ़े बाप के लिए यह आघात असह्य साबित हुआ। इसी दुःख में सन् १२८६ ई० में वह परलोक सिधार गया।

गुलाम-वंश का अन्त

मुहम्मद की मृत्यु हो जाने से बलबन ने अपने लड़के बुगरा खां को उत्तराधिकारी बनाना चाहा, लेकिन उसने दिल्ली का तख्त लेना स्वीकार न किया। तब बलबन ने मुहम्मद के लड़के कैखुसरो को उत्तराधिकारी नियत किया।

लेकिन बलबन की मृत्यु के बाद अमीरों ने मृत सुलतान की इच्छा के विरुद्ध कैखुसरो की जगह बुगरा खां के लड़के कैकुबाद को दिल्ली के तख्त पर बिठाया।

कैकुबाद बहुत ही अयोग्य और विलास-प्रिय शासक निकला। उसके बाप बुगरा खां ने उसे सही मार्ग ग्रहण करने के लिए बहुत समझाया, लेकिन वह मानने वाला न था। उसकी अयोग्यता और कमजोरी से दिल्ली के तुर्क और खिल्जी अमीरों में सल्तनत पर अधिकार करने के लिए झगड़े शुरू हो गये। अन्त में जलालुद्दीन फीरोज के नेतृत्व में खिलजी दल की विजय हुई। कैकुबाद को उसी के महल में मार डाला गया और उसकी लाश जमुना नदी में फिंकवा दी गयी।

इस प्रकार सन् १२९० ई० में गुलाम-वंश का अन्त हो गया और दिल्ली में खिलजी-वंश का नया राज्य कायम हुआ।

अभ्यास के लिए प्रश्न —

१–गुलाम-वंश का पहला सुलतान कौन था ?
उसने कबसे कब तक राज्य किया ?

२–इल्तुतमिश को क्या योग्य शासक माना जाता है ?

३–रजिया कौन थी ? उसके विरुद्ध सरदारों ने विद्रोह क्या किया ?

४–बलबन ने मंगोलों को रोकने के लिए क्या उपाय किये ? उसके बाद उसका वंश क्यों समाप्त हो गया ?

अध्याय ८

खिलजी-वंश

दिल्ली सल्तनत का उत्कर्ष-काल (१२९०-१३२५ ई०)

जलालुद्दीन खिलजी (१२९०–९६)

जलालुद्दीन जिस समय दिल्ली के तख्त पर बैठा वह ७० वर्ष का बुड्ढा हो चुका था। वह सुचरित्र, उदार, न्याय-प्रिय और कोमल स्वभाव का व्यक्ति था। वृद्धावस्था और दयालु स्वभाव के कारण वह विद्रोही और अपराधियों तक को प्रायः क्षमा कर देता था।

उसने रणथम्भौर पर चढ़ाई की, लेकिन राजपूतों के प्रतिरोध से घबड़ा कर वापस लौट आया सन् १२९२ में उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन खिलजी ने जो कड़ा का शासक था, मालवा पर चढ़ाई की और भिलसा से बहुत-सा धन लूट कर दिल्ली लाया।

इसी समय सिन्धु नदी को पार कर मंगोलों का एक दल सुनाम (पटियाला राज्य) तक बढ़ आया। सुल्तान ने दृढ़ता से उनका मुकाबला किया। मंगोल हार गये और उनमें से बहुतों ने इस्लाम-धर्म ग्रहण कर सुल्तान की सेवा करना कबूल

कर दिया। ये लोग दिल्ली के पास बस गये और नव-मुस्लिम कहलाये। इन मंगोलों मे हुलाकु का पोता उलगू खा भी शामिल था। सुल्तान ने खुश होकर उलगू को अपनी एक लड़की भी ब्याह दी।

देवगिरि पर आक्रमण

जलालुद्दीन के शासनकाल की महत्वपूर्ण घटना अलाउद्दीन का देवगिरि पर आक्रमण था। अलाउद्दीन को सुल्तान बहुत प्यार करता था। उसके भिलसा के आक्रमण से खुश होकर सुल्तान ने उसे कड़ा के साथ अवध का शासक भी बना दिया था। लेकिन अपने वृद्ध चाचा जलालुद्दीन के प्रति अलाउद्दीन के अच्छे भाव न थे। वह महत्वाकांक्षी व्यक्ति अपने था। चाचा के तख्त पर उसकी दृष्टि लगी हुई थी। अपनी आकांक्षा पूरी करने के लिए वह बहुत-सा धन एकत्र करना चाहता था, ताकि उस धन से वह अपने सहायकों और सैनिकों की संख्या बढ़ा सके।

जिस समय अलाउद्दीन ने भिलसा पर चढ़ाई की थी, तभी उसे यह भी मालूम हो गया था कि देवगिरि के राजा के पास विपुल धन है। अतः अपनी आकांक्षा की पूर्ति के लिए उसने देवगिरि पर आक्रमण करने का निश्चय किया। अतः सुल्तान को सूचित किये बिना ही वह सन् १२९४ ई० में करीब १० हजार घुड़सवार सेना लेकर दक्षिण को रवाना हो गया। चन्देरी और एलिचपुर होते हुए उसने एकाएक देवगिरि पर धावा बोल दिया। इस अचानक आक्रमण से देवगिरि का यादव राजा रामचन्द्र घबरा गया। उसने अलाउद्दीन की नौकरी

की चप्टा की, लकिन असफल रहा। अत बहुत मा धन देकर वह अलाउद्दीन से सधि करने को मजबूर हुआ। इसी बीच रामदेव का लडका शकरदेव जो अपनी मा को तीर्थ कराने गया था, लौट आया। उसने सधि की शर्तों को तोड़ कर अलाउद्दीन पर आक्रमण कर दिया। पर इस बार भी यादव हार गये और उनके राजा रामदेव को पहले से भी अधिक धन तथा एलिचपुर (उत्तरी बरार) का इलाका अलाउद्दीन को देकर सुलह करनी पडी। असख्य सोना, चादी, जवाहरात व धन-माल लेकर अलाउद्दीन कडा को लौट आया। लूट के इस धन को पाकर अलाउद्दीन ने अपनी आकाक्षा पूरा करने के लिए षड्यन्त्र शुरु कर दिया।

इधर जलालुद्दीन फीरोज अपने भतीजे के षडयन्त्र और मनोभावो से परिचित न था। उसके मनमें कभी यह विचार न उठा कि उसका प्यारा भतीजा और दामाद ही उसके विरुद्ध भीषण षड्यन्त्र रचेगा। अत ऐसे सरल आदमी को फसाना कोई कठिन कार्य नही था। अलाउद्दीन ने सुलतान से कडा आने की प्रार्थना की। विश्वासी सुलतान ने नि शक भाव से अपने भतीजे का निमन्त्रण स्वीकार किया और थोडे से साथियो को साथ लेकर कडा के लिए रवाना हो गया। उसके हितैषियो और प्रधान मन्त्री ने ऐसा न करने की सलाह दी। पर बूढे सुलतान ने किसी की बात न सुनी। भेट के समय जब सुलतान अलाउद्दीन से गले मिल रहा था, तब उसके इशारे पर एक सैनिक ने सुलतान का सिर काट लिया। कुटिल अलाउद्दीन ने मृत सुलतान का सिर भाले मे छेद कर सारी सेना में घुमाया। इस प्रकार छल, कपट और हत्या से उसने शाही तख्त प्राप्त किया।

सुलतान अलाउद्दीन

वलवन के उत्तराधिकारियो की कमजोरी क कारण केन्द्रीय शक्ति कमजोर पड गयी थी । लेकिन अलाउद्दीन न दिल्ली सल्तनत को मजवूत वनाया और सुदूर दक्षिण तक तुर्क-सत्ता को फैला दिया।

मंगोलो का आतंक

अलाउद्दीन के सिंहासन पर बैठते ही मगोलो का एक दल जालन्धर तक वढ आया था, लेकिन उसे पराजित होकर लौट जाना पडा । सन् १२९८मे मगोलो ने फिर दुबारा चढाई की। पर इस वार भी सेनापति, जफरखा ने उन्हें पराजित किया। मगोलो ने फिर कुतलग ख्वाजा के नेतृत्व मे भीषण हमला किया और दिल्ली तक वढ आये। लेकिन वहादुर सेनापति जफर खा ने मगोलो को इस वार भी वुरी तरह हरा कर भगा दिया। इस आक्रमण मे जफर खा भी काम आया। मगोलो ने दो वार फिर आक्रमण किये। पर दोनो ही वार उन्हें वुरी तरह पराजित होना पडा।

गुजरात पर चढ़ाई

सन् १२९७ मे अलाउद्दीन ने अपने भाई उलुग खा और वजीर नुसरतखा को गुजरात पर चढाई करने के लिए भेजा। वहा का राजा कर्ण द्वितीय भाग कर देवगिरी के राजा के यहा चला गया और गुजरात पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया। गुजरात में वहुत-सा धन-माल भी खिलजी सेना के हाथ लगा और वहुसे आदमियो को दास वनाकर वे दिल्ली लाये ।

उन दासों में से एक का नाम काफूर था, जो आगे चलकर मलिक काफूर के नाम से अलाउद्दीन का प्रसिद्ध सेनापति हुआ।

इसी समय नौ-मुस्लिमों ने भी विद्रोह किया। दिल्ली में बसे हुए मंगोल अलाउद्दीन से असंतुष्ट थे, क्योंकि उन्हें राज्य में ऊँचे पद न दिये जाते थे। गुजरात की विजय से लौटते समय नौ-मुस्लिम सैनिकों को लूट का माल भी न दिया गया जिससे उन्होंने तत्काल विद्रोह कर दिया। किन्तु वे बुरी तरह से दबा दिये गये। उनके विद्रोह और षड्यंत्र से क्रोधित होकर अलाउद्दीन ने दिल्ली में भी उनका कत्लेआम करा दिया। इस भीषण कत्लेआम में कई हजार मंगोल स्त्री, पुरुष और बच्चे निर्दयता से मार डाले गये और कई एक मंगोल भाग कर रणथम्भोर के राजा की शरण में चले गये।

अलाउद्दीन का अहंकार

इन विजयों से अलाउद्दीन का अहंकार बहुत बढ़ गया। उसने सिकन्दर की तरह विश्व-विजय करने और पैगम्बर की तरह एक नया धर्म चलाने की इच्छा प्रकट की। लेकिन दिल्ली के कोतवाल क़ाज़ी अलाउलमुल्क ने उसे सलाह दी कि इन महत्वाकांक्षाओं को छोड़ कर पहले राज्य की सु-व्यवस्था करो और भारत के जो प्रदेश अभी तक स्वतन्त्र हैं, उन्हें जीतो। अलाउद्दीन ने उसके सद्-परामर्श को मान लिया और फिर कभी ऐसी इच्छा न प्रकट की।

रणथम्भोर

सन् १२९९ में अलाउद्दीन ने उलग खाँ और नसरत खाँ को

चित्तौड़ अधिकार में आ जाने पर अलाउद्दीन ने अपने लड़के खिज्र खां को वहा का शासक बनाया और चित्तौड़का नाम खिज्रावाद रखा। खिज्र खा के लिए चित्तौड़ को वश मे रखना बहुत कठिन पड़ा। इसलिए सन् १३११ में सुल्तान ने उसकी जगह मालदेव नाम के एक राजपूत को वहां का शासक बनाया। अन्त मे अलाउद्दीन की शक्ति शिथिल पड़ने पर चित्तौड़ पुन: स्वतंत्र हो गया।

चित्तौड़के बाद सन् १३०५ में अलाउद्दीन ने मालवा पर चढ़ाई की और मांडू, उज्जैन, धार व च देरी पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार अलाउद्दीन खिलजीके समय में लगभग सारा उत्तरी-भारत दिल्ली सल्तनत के अधिकार में हो गया।

दक्षिण-विजय

उत्तरी-भारत के बाद अलाउद्दीन ने दक्षिण पर ध्यान दिया। उसके राजत्व-काल में तुर्कों ने दक्षिण में भी अपनी प्रभुता स्थापित की और इस्लाम का झंडा रामेश्वरम् तक फहरा दिया।

दक्षिण में पहला आक्रमण देवगिरि पर हुआ। यादव राजा रामचन्द्र ने दिल्ली को ऐलिचपुर का कर भेजना बन्द कर दिया था, इसलिए सन् १३०७ में मलिक काफूर को देवगिरि पर चढ़ाई करने को भेजा गया। रामचन्द्र देव हार गया और ऐलिचपुर का इलाका दिल्ली राज्यमें मिला दिया गया।

वारंगल

दूसरे वर्ष काफूर ने वारंगल पर चढ़ाई की। वहां के

शासक नियुक्त किया और लूट का अगम्य धन-दौलत लेकर दिल्ली लौट आया।

देवगिरि

देवगिरि के राजा शंकर ने दिल्ली को कर देना फिर बन्द कर दिया, इस पर काफूर ने १३१३ ई० में फिर उस पर चढ़ाई की। शंकर हारा और मार डाला गया।

इस प्रकार काफूर की विजयों के फलस्वरूप सारे दक्षिण पर तुर्क-प्रभुता स्थापित हो गयी। दिल्ली सल्तनत का यह चरमोत्कर्ष था।

अलाउद्दीन का शासन

अलाउद्दीन एक बहुत ही कठोर शासक होने के साथ स्वतन्त्र मनोवृत्ति का व्यक्ति भी था। शासन में वह उलेमाओं का दखल देना पसन्द न करता था। राज्य और शासन के लिए वह जैसा ठीक समझता, वैसा नियम बनाता था।

केन्द्रीय शक्ति को दृढ़ बनाने और विद्रोहों को दबाने के लिए उसने कई कठोर नियम बनाये। उसने अमीरों की जागीरें पेन्शनें और धार्मिक-दान या वक्फ बन्द कर दिये। प्रजा से अनेक उपायों द्वारा खूब रुपया वसूल किया। इस कारण उनकी आर्थिक हालत बिलकुल गिर गयी। उसने गुप्तचरों का एक सुव्यवस्थित संगठन खड़ा किया ताकि वे सुलतान को अमीरों की मामूली से मामूली बातों की खबर देते रहें। इन जासूसों के भय से अमीरों को आपस में खुल कर बातें करना भी कठिन हो गया। उसने शराब का पीना बन्द करा दिया,

और स्वयं भी शराब पीना छोड़ दिया। उसने आज्ञा दी कि कोई अमीर बिना आज्ञा के सामाजिक जलसे या वैवाहिक सम्बन्ध न करें।

दोआब में हिन्दू जमीदारों को दबाने के लिए उन पर खूब कर लगाये गये। उनसे उपज का ५० फी सदी तक भूमि कर वसूल किया जाता था। इसके अलावा मवेशी और चरागाहों पर भी कर लगाया गया। इस अत्यधिक कर के भार से दोआब के लोगों की हालत ऐसी हो गयी थी कि वे घोड़े भी नहीं रख सकते थे और न अच्छे कपड़े ही पहन सकते थे।

राज्य की सुरक्षा के लिए उसने सैनिक संगठन को खूब मजबूत बनाया और सैनिकों की संख्या बढ़ा कर बहुत अधिक कर दी। किन्तु सेना पर अधिक व्यय करना कठिन था, इसलिए उसने सैनिकों का वेतन तो कम रखा, लेकिन अनाज, कपड़ा व अन्य शौक की वस्तुओं के मूल्य नियत कर दिये। बाजार का निरीक्षण करने के लिए उसने विशेष अधिकारी नियुक्त किये, जो नियत दर से ऊंचे भाव पर बेचने और कम तौलने वालों को कठोर दंड देते थे। इस आर्थिक योजना से शहर वालों का तो लाभ हुआ, किन्तु सस्ते दाम पर अनाज बेचने से गरीब किसानों की हानि ही हुई।

खिलजी-वंश का पतन

यद्यपि अलाउद्दीन को अपने शासन के प्रारम्भ काल में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी, लेकिन उसके अन्तिम दिन दुःख में ही बीते। उसने अपने कृपापात्र काफूर को सेनापति और वजीर

बना दिया था। उसने षड्यन्त्र रचकर सुलतान के बड़े लड़के को कैद करा दिया। उसने अमीरों पर भी अत्याचार किए जिस से सर्वत्र असंतोष फैल गया और प्रान्तों में विद्रोह होने लगे। बीमार सुलतान अपने दुर्भाग्य के इन आघातों को न सह सका और सन् १३१६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद काफूर ने उसके एक छोटे लड़के को गद्दी पर बैठाया और स्वयं प्रतिनिधि बनकर शासन करने लगा। किन्तु कुछ ही दिन बाद अलाउद्दीन के एक दूसरे लड़के मुबारक शाह ने काफूर को मरवा डाला और स्वयं सुलतान बन बैठा (१३१६ ई०)।

दक्षिण में देवगिरि, द्वार समुद्र और वारंगल के राज्यों ने इस गड़बड़ी से लाभ उठाया और स्वतन्त्र हो गये। उन्होंने कर देना बन्द कर दिया। सन् १३१७ में मुबारक शाह ने देवगिरि पर स्वयं चढ़ाई की। यादव राजा देव हरपाल देव कैद किया गया और उसकी खाल खिंचवा ली गयी। इसके बाद देवगिरि के प्रान्त को दिल्ली में मिला लिया गया।

मुबारक शाह विलासी व्यक्ति था। उसने खुसरो खां को, जिसे वह बहुत चाहता था अपना प्रधान सेनापति व मंत्री बनाया। खुसरो गुजरात का एक अछूत जाति का व्यक्ति था। यह बाद में मुसलमान हो गया था। मुबारक शाह ने उसे वारंगल पर चढ़ाई करने को भेजा। वारंगल का राजा लड़ाई में हारा और उसने फिर से कर देना स्वीकार किया। वारंगल के बाद

हिन्दुस्तान
सन १३१८ ई०
दिल्ली साम्राज्य की सीमा
दिल्ली
अवध
बंगाल
चित्तौड़
सिन्ध
मुलतान
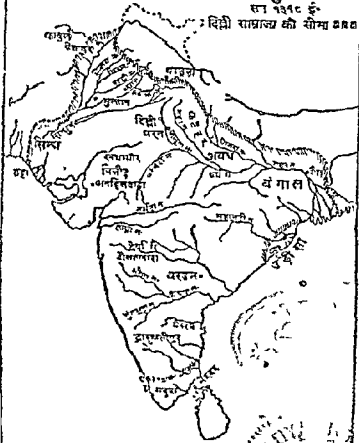
. सुलतान की मृत्यु होने पर जूना, मुहम्मद तुगलक के ना॰ सन १३२५ में दिल्ली के तख्त पर बैठा।

अभ्यास क लिए प्रश्न

१–अलाउद्दीन ने किस प्रकार दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार किय।
२–अलाउद्दीन के समय में मगोलो ने कितनी बार चढाइयां की सुतान ने उनमे कैसे छुटकारा पाया ?
३–काफूर कौन था ? उसने दक्षिण में किन–किन राज्योकी विजय की। उनमें से चित्तौड विजय का वर्णन कीजिए ?
४–अलाउद्दीन के शासन प्रबन्ध पर प्रकाश डालिए ?
५–खिलजी वशका किस तरह पतन हुआ ?

अध्याय ६

तुगलक-वंश

दिल्ली साम्राज्य का ह्रास

मुहम्मद तुगलक

मुहम्मद तुगलक ने तख्त पर बैठने के बाद जनता और अमीरों को खुश करने के लिए अलाउद्दीन की तरह खूब धन बाटा। वह एक बहुत ही गुणवान और सुशिक्षित व्यक्ति था। वह अनेक विद्याओं में पारंगत था। वह सुन्दर लेखन कला में भी सिद्ध-हस्त था। फारसी काव्य का उसे अच्छा ज्ञान था। वह अच्छा लेखक और वक्ता भी था।

वह अपने धर्म का कट्टर अनुयायी था। किन्तु शासन में वह धार्मिक पक्षपात न होने देता था। वह अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक-सा समझता था। वह वास्तव में प्रजा का सेवक होना चाहता था। वह आदर्श-व्यक्ति था। उसका निजी जीवन बहुत ही सादा और निर्दोष था। वह दान देने में बड़ा उदार था। उसकी दानशीलता की इब्नबतूता ने भी बड़ी प्रशंसा की है।

भय्न से खजाने में धन की बहुत कमी हो गयी थी। दूसरी तरफ देशों को जीतने के लिए भी रुपये की आवश्यकता बढ़ गयी थी। अत खजाने को भरने और शासन का खर्चा पूरा करने के लिए उसने एक नयी योजना निकाली। उसने तांबे का सिक्का चलाया और आज्ञा दी कि यह सिक्का चांदी-सोने के सिक्कों के बराबर माना जाय। इन सिक्कों को कोई भी घर में ढाल सकता था। अत सब लोग अपने घर में सिक्के बनाने लगे। लोगों ने सोने-चांदी के सिक्के तो घरों में रख लिये और तांबे के सिक्के राज-कर में चुकाये। व्यापारियों ने भी सोने-चांदी के सिक्के घरों में भर लिये और तांबे के सिक्कों से माल खरीदने लगे। इससे व्यापार और उद्योग-धन्धों को बहुत हानि पहुंची और आर्थिक व्यवस्था बिल्कुल गड़बड़ा गयी। आखिर तीन साल के प्रचलन के बाद सुल्तान ने तांबे के सिक्कों को बन्द करा दिया और हुक्म दिया कि लोग तांबे के सिक्कों के बदले में चांदी-सोने के सिक्के ले जाय। परिणामत सरकारी खजाने का बहुत-सा रुपया व्यर्थ ही बाहर निकल गया, जिससे राज्य को काफी आर्थिक क्षति पहुंची।

सुल्तान के राजत्वकाल की मुख्य घटनाएं

अलाउद्दीन खिलजी की तरह मुहम्मद तुगलक को भी दूर-दूर के देशों को विजय करने की सूझी। उसके दरबार में कुछ खुरासान के सरदार रहा करते थे, जिन्हें वह खूब इनाम देता था। उन दिनों खुरासान और ईराक में अशान्ति थी। अत मुहम्मद की कृपा प्राप्त करने के

लिए खुरासान के सरदारो ने सुलतान को खुरासान, ईराक, आदि देशो को जीतने की सलाह दी। उनके सुझाव पर सुलतान ने बहुत बडी सेना एकत्रित की। किन्तु एक साल तक सेना का खर्चा उठाने के बाद अन्त में रास्ते की कठिनाइयो का विचार करके उनने अपना निश्चय बदल दिया।

सुलतान ने हिमालय (कुमायू-गढवाल के प्रदेश पर) के एक हिन्दू राज्य पर भी चढाई करने को सेना भेजी। वहा का राजा हार गया और उसने सुलतान को कर देना स्वीकार कर लिया। किन्तु इस लडाई मे सुलतान को लाभ से अधिक नुकसान उठाना पडा।

अकाल (१३३५-४२ ई०)

सुलतान के राजत्व काल में एक भयकर दुर्भिक्ष पडा। यह दुर्भिक्ष लगभग सात साल तक रहा। इस अवसर पर सुलतान दिल्ली की भूखी जनता को अवध के एक नगर सरगद्वारी (स्वर्ग द्वार) में ले गया। यह नगर दिल्ली से १५० मील की दूरी पर था। अवध में उस समय अकाल न था। इसलिए वहा जाने से दिल्ली के लोगो के अकाल के दिन चैन से कट गये।

अशांति और विद्रोह

सुल्तान की निष्फल योजनाओ, अत्यधिक लगान वसूली तथा कठोर शासन के परिणाम से सर्वत्र अशाति छा गयी और विद्रोह होने लगे। इस के सिवा अकाल के कारण सल्तनत की हाल्त और भी बिगड गयी।

ये विद्रोह सुलतान के शासन के आरभ काल से ही शुरु

करने से खजाने में धन की बहुत कमी हो गयी थी। दूसरी तरफ देशों को जीतने के लिए भी रुपये की आवश्यकता बढ़ गयी थी। अतः खजाने को भरने और शासन का खर्चा पूरा करने के लिए उसने एक नयी योजना निकाली। उसने तांबे का सिक्का चलाया और आज्ञा दी कि यह सिक्का चांदी-सोने के सिक्कों के बराबर माना जाय। इन सिक्कों को कोई भी घर में ढाल सकता था। अतः सब लोग अपने घर में सिक्के बनाने लगे। लोगों ने सोने-चांदी के सिक्के तो घरों में रख लिये और तांबे के सिक्के राज-कर में चुकाये। व्यापारियों ने भी सोने-चांदी के सिक्के घरों में भर लिये और तांबे के सिक्कों से माल खरीदने लगे। इससे व्यापार और उद्योग-धन्धों को बहुत हानि पहुंची और आर्थिक व्यवस्था बिल्कुल गड़बड़ा गयी। आखिर तीन साल के प्रचलन के बाद सुल्तान ने तांबे के सिक्कों को बन्द करा दिया और हुक्म दिया कि लोग तांबे के सिक्कों के बदले में चांदी-सोने के सिक्के ले जाय। परिणामतः सरकारी खजाने का बहुत-सा रुपया व्यर्थ ही बाहर निकल गया, जिससे राज्य को काफी आर्थिक क्षति पहुंची।

सुल्तान के राजत्वकाल की मुख्य घटनाएं

अलाउद्दीन खिलजी की तरह मुहम्मद तुगलक को भी दूर-दूर के देशों को विजय करने की सूझी। उसके दरबार में कुछ खुरासान के सरदार रहा करते थे, जिन्हें वह खूब इनाम देता था। उन दिनों खुरासान और ईरान में अशान्ति थी। अतः मुहम्मद की कृपा प्राप्त करने के

लिए खुरासान के सरदारो ने सुलतान को खुरासान, ईराक, आदि देशो को जीतने की सलाह दी। उनके सुझाव पर सुलतान ने बहुत बडी सैना एकत्रित की। किन्तु एक साल तक सेना का खर्चा उठाने के बाद अन्त में रास्ते की कठिनाइयो का विचार करके उसने अपना निश्चय बदल दिया।

सुलतान ने हिमालय (कुमायू-गढवाल के प्रदेश पर) के एक हिन्दू राज्य पर भी चढाई करने को सेना भेजी। वहा का राजा हार गया और उसने सुलतान को कर देना स्वीकार कर लिया। किन्तु इस लडाई में सुलतान को लाभ से अधिक नुकसान उठाना पडा।

अकाल (१३३५-४२ ई०)

सुलतान के राजत्व काल में एक भयकर दुर्भिक्ष पडा। यह दुर्भिक्ष लगभग सात साल तक रहा। इस अवसर पर सुलतान दिल्ली की भूखी जनता को अवध के एक नगर सरगद्वारी (स्वर्ग द्वार) में ले गया। यह नगर दिल्ली से १५० मील की दूरी पर था। अवध में उस समय अकाल न था। इसलिए वहा जाने से दिल्ली के लोगो के अकाल के दिन चैन से कट गये।

अशांति और विद्रोह

सुलतान की निष्फल योजनाओ, अत्यधिक लगान वसूली तथा कठोर शासन के परिणाम से सवन अशाति छा गयी और विद्रोह होने लगे। इस के सिवा अकाल के कारण सल्तनत की हालत और भी बिगड गयी।

ये विद्रोह सुलतान के शासन के आरभ काल से ही शुरू

हो गये थे। लगभग सन् १३२७ में मध्य भारत में सागर के मुस्लिम शासक ने विद्रोह किया था और उसके दूसरे वर्ष मुलतान के शासक ने भी बगावत की थी। लेकिन इन दोनों को तब सुलतान ने बुरी तरह से कुचल दिया था। परन्तु सन् १३३५ में मअबर के सूबेदार ने विद्रोह कर के मदुरामें स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। इसी समय के लगभग दक्षिण में विजयनगर का हिन्दू राज्य भी पनप उठा। पूरब मे बगाल भी दिल्ली से अलग हो गया और लखनौती मे शम्सउद्दीन इलियासने अपना स्वतंत्र राज्य कायम कर लिया (१३४५ ई०)।

गुजरात और देवगिरि में विद्रोह

दूसरी तरफ गुजरात और देवगिरि विद्रोह के दो बड़े अड्डे बन गये थे। ये विद्रोही विदेशी मुस्लिम अमीर थे जो सादा अमीर कहलाते थे। इन्हें सुलतान कुचल देना चाहता था। उस की इस दमन नीति के कारण ही ये विद्रोही इतनें प्रबल हो उठे कि उन्हें दबाना असभव सा हो गया।

बहमनी वंश की स्थापना

सुलतान जब गुजरात और सिंध के विद्रोहियो के विरुद्ध युद्ध मे फसा हुआ था, दक्षिणी अमीरों ने देवगिरि में विद्रोह किया। सुलतान के प्रान्तीय शासक को मार कर उन्होंने अपने नेता हसन् गागू या काग़ू को दक्षिण का स्वतंत्र सुलतान बना दिया। कांगूने अलाउद्दीन बहमन शाह की उपाधि धारण की और सन् १३४७ ई० में बहमनी वंश के स्वतंत्र राज्य की नींव डाली।

लेकिन धर्मान्ध होते हुए भी फीरोज एक सयोग्य शासक था। राज्य की शाति और समृद्धि के लिए उसने अनेक कार्य किये। शासन कार्य में उसे अपने मत्री खाने-जहान मक्बूल से बहुत सहायता मिली। मक्बूल जन्म से एक तैलग ब्राह्मण था और बाद में मुसलमान हो गया था।

प्रजा की माली हालत सुधारने के लिए सुलतान ने माल-गुजारी बहुत कम कर दी। फलत किसानो की हालत सुधर गयी और गाव फिर से हरे-भरे हो गये। खेती की उन्नति के लिए उसने सतलज और जमुना से नहरें भी निकलवायी।

सुलतान ने दिल्ली के आसपास लगभग १२०० बाग लगवाये। उसने कई नये नगर भी बसाये तथा बहुत से मदरसे, मस्जिदें, इमारतें, शफाखाने और सराय आदि बनवाये। फीरोजाबाद, दिल्ली, फतेहाबाद, हिसार, जौनपुर आदि नगर उसी ने बसाये थे।।

सुलतान ने पुन जागीर प्रथा चलायी और सारे राज्य को जागीरो मे बाट दिया। ऐसा करने से साम्राज्य की शक्ति को बहुत बडा धक्का लगा। उसने गरीब मुसलमानो की सहायता के लिए एक अलग विभाग खोला। गरीब मुसलमानो को लडकियो की शादी करने के लिए वह सहायता दिया करता था। बीमारो की मुफ्त चिकित्सा के लिए उसने दिल्ली मे एक बहुत बडा चिकित्सालय खोला था। यात्रियो के सुभीते के लिए उसने मार्ग में तालाब

खुदवाये और सराए बनवायी थी।

साहित्य को भी उसने प्रोत्साहन दिया। उसके दरबार में इतिहास की चर्चा बहुत होती थी। जियाउद्दीन बरनी और आफिफ उसके दरबार के नामी इतिहासज्ञ थे। सुल्तान स्वय एक विद्वान और लेखक था। नगरकोट म उसे बहुत से सस्कृत ग्रन्थ मिले थे, जिनका उसने फारसी मे अनुवाद कराया। नि सन्देह फीरोज के सु-शासन मे प्रजा के बहुत से कष्ट और दु ख-दर्द दूर हो गये। देश की समृद्धि भी बढ चली और चीजें काफी सस्ती हो गयी।

विजय

यद्यपि फीरोज एक सुयोग्य-शासक था, लेकिन सैनिक दृष्टि से वह कुशल सेनापति नही कहा जा सकता। दक्खिन के जो राज्य मुहम्मद के समय मे दिल्ली सल्तनत स निकल गये थे, उनको छेडने का विचार तक उसने नही किया। लेकिन तख्त पर बैठने के १ वर्ष बाद उसे बगाल पर चढाई

सुल्तान के लौटने के बाद ही इलियास शाह ने पूर्वी बंगाल पर भी अधिकार कर लिया। सन् १३५७ में उसकी मृत्यु हो गयी और उसका लड़का सिकन्दर शाह बंगाल की गद्दी पर बैठा। पूर्वी बंगाल के पहिले शासक को पुन. अधिकार दिलाने के लिए फीरोज ने बंगाल पर दुबारा चढ़ाई की किन्तु इस बार भी वह असफल रहा और लौट आया।

बंगाल जाते समय फीरोज ने जफराबाद के पास एक नया नगर भी बसाया जिसका नाम उसने अपने भाई सुल्तान जूना (मुहम्मद तुगलक) के नाम पर जौनपुर रखा।

नगरकोट

सन् १३६१ मे सुलतान ने नगरकोट पर आक्रमण किया। नगरकोट के राजा ने जोरों से मुकाबला किया लेकिन अन्त में उसे सुलतान की अधीनता स्वीकार करलेनी पड़ी। नगरकोट से फीरोज बहुत से सस्कृत ग्रन्थो को भी अपने साथ दिल्ली लाया।

सिंध

सन् १३६२-६३ में फीरोज ने ठट्टा (सिंध) पर चढ़ाई की। सिंध मे तब जाम शासक राज्य करते थे। फीरोज के आक्रमण करने पर सिंध के राजा ने उसका दृढता से मुकाबला किया। एक साल बाद फीरोज ने फिर सिंध पर आक्रमण किया। इस बार वहा का राजा हार गया और सुलतान उसे अपने साथ दिल्ली लेता आया। लेकिन फीरोज के ही राज्य काल में कुछ समय बाद सिंध के जाम पुनः स्वतंत्र हो गये। अतः सिंध का आक्रमण

भी अन्त म निष्फल हुआ। उसके शासन के अन्तिम काल म कटेहर (वर्तमान रुहेलखण्ड) के राजपूतो ने भी विद्रोह किया। लेकिन उन्हें कठोरता के साथ दबा दिया गया।

फीरोज अब काफी बूढा हो चुका था। तो भी किसी तरह वह अत तक राज्य को सभाले रहा। सन् १३८८ मे लगभग ८४ वर्ष की आयु भोग कर वह परलोक सिधार गया।

तैमूर का आक्रमण

फीरोज के उत्तराधिकारी बिल्कुल अयोग्य और निर्बल साबित हुए। दिल्ली सल्तनत की वे किसी भी तरह रक्षा नही कर सके। सल्तनत के लगभग सभी सूबे स्वतत्र हो गये और दिल्ली राज्य की हालत बहुत खराब हो गयी।

दिल्ली सल्तनत की इस शोचनीय स्थिति का हाल सुन कर मध्य-एशिया के प्रसिद्ध विजेता तैमूर न हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का निश्चय किया। वह हिन्दुस्तान की सम्पत्ति का प्राप्त करने के लिए लालायित था। अत उसने अपने सर-दारो और सिपाहियो का भी यह कह कर जोश दिलाया कि वह इस्लाम का प्रचार करने और मूर्त्ति-पूजा का अन्त करने के लिए हिन्दुस्तान जाना चाहता है। इस प्रकार धार्मिक जोश दिलाकर तैमूर ने अपने सरदारो को भारत म घुसने के लिए तैयार कर लिया। सन् १३९८ म उसने पहले अपने पौत्र पीर मुहम्मद को भारत भेजा। उसने आकर मुल्तान को ले लिया। कुछ समय बाद १३९८ में ही तैमूर भी स्वय हिन्दुस्तान के लिए समरकन्द से रवाना हो गया और बिना रोक-टोक के सिन्धु नदी
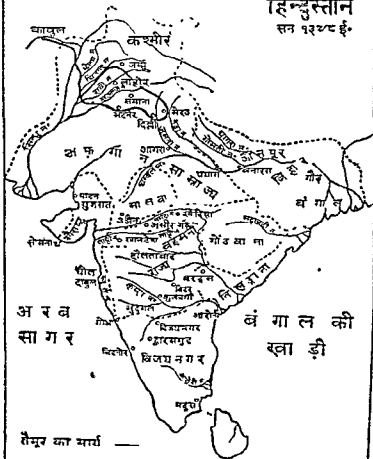
को पार कर पजाब को रौंदता हुआ दिल्ली के निकट आ पहुँचा। इस समय उसके साथ लगभग एक लाख हिन्दू बंदी थे जिन्हें उसने दिल्ली पहुँचने पर मरवा डाला। तुगलक सुल्तान महमूद और उसके सेनापति ने उसका मुकाबला किया लेकिन हार गये। महमूद भाग कर गुजरात चला गया।

५ तैमूर

विजय के बाद तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया। उसकी सेना ने रात भर व कई दिनों तक दिल्ली शहर को लूटा और तथा वहाँ के लोगों को कत्ल भी किया।

पर बैठाया। उसके समय मे दिल्ली का अधिकार निकट कुछ गाँवो तक ही रह गया था। हिन्दू और मुस्लिम शासक प्रबल हो गये थे। लगभग सन् १४४५ मे उसकी मृत्यु होने पर उसका लडका आलमशाह गद्दी पर बैठा। वह बहुत ही निकम्मा और विलास-प्रिय व्यक्ति था। सन् १४५१ में उसने लाहौर व सरहिन्द के शासक बहलोल लोदी को दिल्ली का तख्त सौप दिया और स्वय अपनी जागीर बदायू मे जा बसा। इस प्रकार सैय्यद वश का अन्त हुआ और दिल्ली में लोदी वश का राज्य स्थापित हुआ।

लोदी वंश, बहलोल लोदी

बहलोल लोदी अफगान था। दिल्ली के तख्त पर बैठनेवाला वह पहला अफगान शासक था।

बनाया। सन् १४८९ मे बहलोल की मृत्यु हो गयी।

बहलोल एक बुद्धिमान, नीतिज्ञ और विनम्र शासक था। अपने अमीरो को वह हमेशा प्रसन्न रखता था और उनके साथ मित्रो का सा व्यवहार करता था। उसके इस व्यवहार के कारण ही अमीर उससे प्रसन्न और सतुष्ट बने रहे।

बहलोल के बाद उसका लडका सिकन्दरशाह तख्त पर बैठा। फीरोज तुगलक की तरह उसकी माँ भी एक हिन्दू सुनार की लडकी थी। वह बहुत शक्तिशाली शासक साबित हुआ। उसने बिहार तक अपना राज्य फैलाया और बगाल के सुल-तान से मैत्री स्थापित की। तिरहुत के राजा से उसने कर वसूल किया। अपने भाई बारबकशाह को उसने जौनपुर से हटा दिया।

धौलपुर और चन्देरी आदि के राजाओ को भी उसने अपने अधीन किया। इटावा, ग्वालियर, कोइल (अलीगढ) आदि के विद्रोही सरदारो का उसने दमन किया। इन स्थानो पर निगाह रखने के लिए उसने यमना के किनारे सन् १५०४ में आगरा नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया।

सिकन्दरशाह एक योग्य और शक्तिशाली व्यक्ति था। लेकिन हिन्दू माता से जन्म लेने पर भी वह फीरोज की तरह ही धर्मान्ध था। इस धर्मान्धता के कारण उसने हिन्दुओ के बहुत मे मन्दिरो को तुडवाया और उनकी धार्मिक स्वतत्रता का अपहरण किया। किन्तु इस दोष के होने पर भी वह सुयोग्य और प्रतापी शासक था। उसके सुशासन के फलस्वरूप देश में शाति और समृद्धि बनी रही और आवश्यक वस्तुओ की

दर बहुत सस्ती हो गयी। सन १५१७ मे इस योग्य सुल्तान की मृत्यु हो गयी।

इब्राहीम लोदी

सिकन्दर के बाद उसका बेटा इब्राहीम तख्त पर बैठा। वह अभिमानी और अव्यवहारिक व्यक्ति था। उसके व्यवहार मे घमडी अफगान सरदार असतुष्ट हो गये और उसके विरुद्ध विद्रोह तथा षड्यन्त्र करने लगे।

उसके समय म पजाब के विद्रोही अफगान सरदार दौलत-खाँ लोदी ने काबुल के मुगल बादशाह बाबर को बुला भेजा जिसने भारत मे पहुचकर लोदी सल्तनत का अन्त कर दिया और उसकी जगह मुगल साम्राज्य की नीव डाली।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—सैय्यद-वश का सस्थापक कौन था ? यह वश कब समाप्त हुआ ?

२—लोदी-वश का सस्थापक कौन था ? क्या वह एक सुयोग्य शासक कहा जा सकता है ?

३—लोदी-वश के दूसरे बादशाह का वर्णन करिए

अध्याय ११

१५ वीं शताब्दी के प्रमुख प्रान्तीय राज्य

प्रान्तीय राज्य

तुगलक वश के पतन होने पर दिल्ली सल्तनत के लगभग सभी प्रान्त स्वतंत्र हो गये थे। फलत वहा के प्रान्तीय शासको ने अपने अलग वश स्थापित कर लिये और दिल्ली से स्वतन्त्र होकर शासन करने लगे। इन प्रान्तीय राज्यों में गुजरात, मालवा, जौनपुर और बगाल के मुस्लिम-राज्य प्रमुख थे। इन के अलावा काश्मीर मे भी स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य स्थापित हो गया था। राजपूताना में मेवाड और दक्षिण म बहमनी तथा विजयनगर के राज्य, प्रबल हो चले थे। इस प्रकार १५ वी शताब्दी में एक केन्द्रीय साम्राज्य की जगह अनेक प्रान्तीय राज्य पनप उठे थे।

गुजरात

तैमूर के आक्रमण के समय गुजरात का हाकिम जफरखा स्वतन्त्र हो गया था। उसने मुजफ्फरशाह प्रथम (१४०१-

१४११) के नाम से राज्य किया । उसके बाद उसका पौत्र अहमदशाह गुजरात के तख्त पर बैठा। वह गुजरात का पहला प्रसिद्ध बादशाह हुआ। उसने अहमदनगर बसाया। उसने मालवे के सुलतान और जूनागढ के राय को परास्त किया।

लेकिन गुजरात का सबसे प्रसिद्ध बादशाह महमूद शाह बेगडा हुआ। उसने सन् १४५९ से १५११ तक राज्य किया । उसने गिरनार और चम्पानेर को जीता। इसके समय में गुजरात के राज्य ने बहुत विकास और प्रसार किया । इसी समयपुर्तगालियो ने भी पश्चिमी समुद्र-तट पर अधिकार कर लिया । इस से अरब व्यापारियों को बहुत हानि पहुची।अत महमूद ने जलसेना तैयार की और तुर्की के सुलतान से मिलकर १५०८ में पुर्तगालियो को हराया। लेकिन दूसरे ही वर्ष पुर्तगालियो ने ड्यू मे महमूद की जलसेना को हरा दिया और अरब सागर के स्वामी बन गये। महमूद को तब पुर्तगालियो से सुलह कर लेनी पडी।

गुजरात का अन्तिम प्रसिद्ध सुलतान बहादुरशाह हुआ। इसने मालवे पर अधिकार किया और चित्तौड पर आक्रमण किये। १५३५ मे मुगल बादशाह हुमायू ने उसे परास्त किया। लेकिन मुगल बादशाह के लौटने पर उसने पुन गुजरात पर अधिकार कर लिया। सन् १५३७ मे पुर्तगालियो ने उसे धोखे से डुबा कर मार डाला। बहादुरशाह के बाद गुजरात मे अराजकता फैल गयी । अत में अकबर ने उसे मुगल सल्तनत में मिला लिया ।

मालवा

मालवा का जागीरदार दिलावर खां गोरी भी सन् १४०१ में स्वतंत्र हो गया। उसने धार को अपनी राजधानी बनाया। सन् १४०६ में उसका लड़का होशंगशाह गद्दी पर बैठा। उसे अपने पड़ोसी गुजरात, बहमनी आदि राज्यों से युद्ध करना पड़ा। गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह ने उसे युद्ध में परास्त किया। बाद में होशंग ने उड़ीसा पर आक्रमण किया और वहां के राजा से कर वसूल किया। सन् १४३५ में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका लड़का गजनी खां सुल्तान हुआ। वह निकम्मा और विलासी था। अतः उसके वजीर महमूद खां खिलजी ने उसे मारकर मालवे की गद्दी पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार मालवे का गोरी वंश समाप्त हुआ और उसकी जगह खिलजी वंश ने ले ली।

महमूद खां खिलजी ने सन् १४३६ से १४६९ तक राज्य किया। वह गुणवान और कुशल शासक सिद्ध हुआ। मालवे का वह सबसे प्रसिद्ध और प्रतापी सुल्तान माना जाता है। उस के समय में मालवे की खूब उन्नति हुई और जनता सुखी रही। उसने गुजरात, मेवाड़ और बहमनी राज्य के साथ कई युद्ध किये। एक बार वह दिल्ली तक बढ़ गया था। मेवाड़ के राणा कुम्भा के साथ भी उसने कई बार युद्ध किये। किन्तु दोनों में अन्त में कौन जीता, यह कहना कठिन है। एक बार दोनों ने अपने को विजेता माना
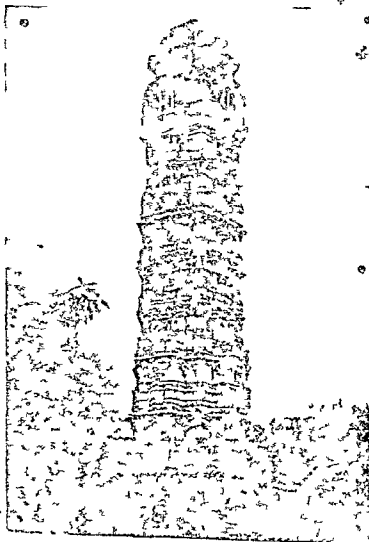
चित्तौड़ का विजय स्तम्भ

और एक ने माडू में और दूसरे ने चित्तौड में विजयस्तम्भ बनवाये।

राणा कुम्भा का विजयस्तम्भ चित्तौडगढ मे आज भी विद्यमान है। इसमें सन्देह नही कि महमूद एक यशस्वी शासक था। उसका यश बाहर के देशो मे भी फैला था। मिस्र के खलीफा ने उसे मान्यता प्रदान की थी। वह एक न्यायी और पक्षपात-रहित शासक था। उसके समय मे हिन्दू व मुस्लिम प्रजा दोनो सुखी रही और उनमे परस्पर खूब मेल-जोल रहा।

मालवे का अन्तिम सुलतान अलाउद्दीनशाह महमूद द्वितीय हुआ। उसने सन् १५१० से १५३१ तक राज्य किया। वह निर्बल शासक था और राजपूत सरदारो के भरोसे राज्य करता था। मेदिनीराय नाम के एक राजपूत सरदार को उसने अपना मत्री बनाया था। मत्री की शक्ति बढने पर महमूद ने गुजरात के सुलतान मुजफ्फरशाह से सहायता मागी। मुजफ्फर-शाह की मदद से उसने मेदिनीराय को निकाल बाहर किया। किन्तु चित्तौड के राणा सग्राम सिंह से उसे पराजित होना पडा। राणा ने उसे कैद भी कर लिया था, लेकिन बाद में उदारता पूर्वक उसे मुक्त कर दिया। अत में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने महमूद का अन्त कर मालवे को गुजरात में मिला लिया। बाद में माल्वे पर हुमायू ने कब्जा किया। किन्तु हुमायू के लौटते ही मल्लूखा नामके एक व्यक्ति ने माल्वा में अपना राज्य स्थापित कर लिया। उसने कादिरशाह की उपाधि

की। कुछ समय बाद दिल्ली के अफगान बादशाह शेरशाह ने बादिरशाह से मालवा छीन लिया। अन्त में अकबर ने मालवा के राज्य को जीतकर मुगल राज्य में मिला दिया।

जौनपुर

अन्तिम तुगलक सुलतान के समय सन् १३९४ में जौनपुर के हाकिम मलिक सरवर ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। उसने मलिक-उश्शर्क की उपाधि धारण की। उसका वंश शर्की-वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उसने अवध पर अधिकार किया। पूरब में विहार और तिरहुत तथा पश्चिम में कोइल (अलीगढ) तक का प्रदेश उसके अधिकार में था। जौनपुर उसकी राजधानी थी।

उसके बाद उसका दत्तक-पुत्र करनफूल मुबारक शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। उसने अपनी स्वाधीनता को कायम रखा। उसकी मृत्यु होने पर सन् १४०२ में उसका भाई इब्राहीम शाह शर्की सुल्तान हुआ। वह गुणवान और कला-प्रेमी व्यक्ति था। उसके समय में जौनपुर शिक्षा का बहुत प्रसिद्ध केन्द्र हो गया था। उसने बंगाल पर आक्रमण किया, किन्तु कोई फल नहीं हुआ। दिल्ली और कालपी पर भी उसने असफल चढ़ाइयां कीं। मुसलमान लेखकों ने उसे उदार बादशाह बतलाया है; लेकिन धार्मिक पक्षपात उसमें भी कम न था। उसने अटालादेवी के मन्दिर को तुड़वाकर प्रसिद्ध

अटाला मस्जिद बनवायी थी। यह मस्जिद जौनपुर की वास्तु-कला का उत्कृष्ट नमूना मानी जाती है।
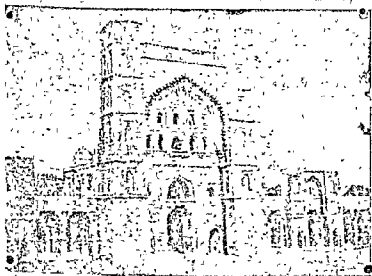
अटाला मस्जिद

सन् १४३६ में उसकी मृत्यु होने पर उसका लड़का महमूद शाह जौनपुर के तख्त पर बैठा। उसने कई बार दिल्ली पर चढ़ाई की, लेकिन दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी ने उसे पीछे खदेड़ दिया। वह कला और साहित्य का भी प्रेमी था। सन् १४५७ में उसकी मृत्यु हो गयी।

उसका लडका हुमेन शाह शर्की-वंश का अन्तिम बादशाह हुआ। उसने निरहुत, उडीसा और ग्वालियर पर चढाइयां की। किन्तु सन् १४७९मे वह स्वयं दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी से बुरी तरह परास्त हुआ और जौनपुर दिल्ली मे मिला लिया गया। हुसेन तब भागकर बंगाल चला गया और वही उसकी मृत्यु हुई ।

शर्की राजा कला और विद्या के वडे प्रेमी थे। उनके समय में जौनपुर ने सांस्कृतिक दृष्टि रो खूब ख्याति प्राप्त की।

बंगाल

हम पहले वतला चुके है कि फीरोज तुगलक ने इलियास शाह और उसके बेटे सिकन्दर शाह पर चढाइयां की थी लेकिन उन्हें दवा न सका था। सिकन्दर शाह का लड़का गयासुद्दीन आजम शाह (१३९३–१४१०) योग्य शासक निकला। किन्तु उसके उत्तराधिकारी हमजा शाह के समय दीनाजपुर का ब्राह्मण जमीदार राजा गणेश प्रवल हो गया। उसने हमजा शाह को मार डाला और स्वय वगाल का शासक बन बैठा। उसने इस्लाम-धर्म को मिटाकर हिन्दू-धर्म को फैलाने का प्रयत्न किया और गौड को राजवानी बनाया। किन्तु उसका लडका मदु मुसलमान हो गया और उसने अपना नाम जलालुद्दीन रखा। सुलतान होने पर उसने हिन्दुओं का बुरी तरह से दमन किया। पर उसके वाद उसके लड़के को अमीरों ने मार डाला और पुनः इलियास के एक वंशज नासिरुद्दीन महमूद शाह को बंगाल के तख्त पर बैठा दिया।

महमूदशाह के उत्तराधिकारियों के समय में हब्शी सरदार बहुत शक्तिशाली हो गये। सन् १४९० में एक हब्शी सरदार ने बंगाल पर अधिकार कर लिया, लेकिन हुसैन शाह नाम के एक दूसरे अरब सरदार ने उसे मार डाला और अमीरों की सलाह से स्वयं बंगाल का सुलतान बन गया (१४९३ई०)। इस प्रकार उसने बंगाल में एक नये वंश की स्थापना की।

हुसैन शाह बंगाल का बहुत ही प्रतिभाशाली और गुणवान सुलतान हुआ है। जौनपुर के शर्की सुलतान हुसैन ने लोदी सुलतान से पराजित होने के बाद उसी के यहां शरण ली थी। हुसैन ने बंगाल में शांति स्थापित की और राज्य की सीमाओं को फैलाया। उसने आसाम पर सफलतापूर्वक आक्रमण किया, लेकिन उसे पूरी तरह से जीत न सका। साधारणतया उसका राज्य-काल शांतिमय रहा और बंगाल ने अच्छी उन्नति की। सन् १५१८ में उसकी मृत्यु होने पर उसका लड़का नुसरत शाह सुलतान हुआ। उसने तिरहुत पर आक्रमण किया और उस प्रान्त पर अपना अधिकार जमाया। वह कला और साहित्य का प्रेमी था। गौड़ में उसने दो प्रसिद्ध मस्जिदें बनवायीं और महाभारत का बंगला में अनुवाद कराया। सन् १५३२ में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरने के बाद अफगान शेरखाँ सूर ने बंगाल पर अधिकार कर लिया। इस तरह हुसैन शाही-वंश भी समाप्त हुआ।

काश्मीर

हिमालय का पहाड़ी-प्रदेश होने के कारण प
पर मुस्लिम आक्रमणकारी आसानी से धावा
कर सके। अत सन् १३४६ तक वहा हिन्दू-राज्य बन
रहा। किन्तु इस समय काश्मीर के राजा की नौकरी में कु
भी थे। सन् १३४६ मे राजा के मरने पर उसके तुर्क से.
शाहमीर ने काश्मीर को अपने अधिकार मे कर लिया।
काश्मीर में तुर्कों का शासन यहीं से शुरू होता है। शाहमीर
ने सुल्तान होने पर शम्सुद्दीन शाह की उपाधि धारण की।
तैमूर के आक्रमण के समय मे उसका वंशज सिकन्दर
वहा राज्य करता था। वह विद्याप्रेमी व्यक्ति था,
लेकिन हिन्दुओं के प्रति बहुत अनुदार था।

उसका लडका शाहीखान जैन-उल-आबिदीन (१४२०–१४७०ई०) बहुत ही उदार और निष्पक्ष सुलतान निकला। उसने हिन्दुओ पर जुल्म करने की नीति को त्याग दिया। जनता की भलाई के लिये उसने अनेक कार्य किये। उसने हिन्दुओं पर से जजिया कर भी उठा दिया। नि.सन्देह वह उदार, गुणवान, विद्वान और कला-प्रेमी शासक था। उसने महाभारत और राजतरंगिणी का फारसी मे अनुवाद कराया। उसके इस सुशासन और उदारता के कारण इतिहासकारो ने उसे काश्मीर का अकबर कहा है।

किन्त उसके बाद उसके उत्तराधिकारी निकम्मे और

विरुद्ध सिद्ध हुए। लगभग सन् १५५५ में उनका काश्मीर पर से अधिकार हट गया। अन्त में अकबर ने काश्मीर को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया.

राजपूताना-मेवाड़

तुर्क और अफगान सल्तनत के टूटने पर राजपूताना में पुन स्वाधीनता के भाव प्रबल हो उठे थे। तुर्क आक्रमणकारियों और सुलतानों ने राजपूतों के जिस गौरव और राजशक्ति को समाप्त कर दिया था, उसे पुन. प्राप्त करने के लिये मेवाड़ विशेषकर प्रयत्नशील था। पहले बतला चुके है कि अलाउद्दीन खिलजी ने सबसे पहले चित्तौड़ पर अधिकार किया था। किन्तु उसका ह्रास होने पर राजा हम्मीर ने चित्तौड़ पर पुन अधिकार कर लिया (१३२६ ई०)। मेवाड़ के ये राजपूत राजा सीसोदिया नाम से भी प्रसिद्ध है। हम्मीर बहुत ही प्रतिभाशाली राजा था। १५वीं सदी में राणा कुम्भा के शासनकाल में मेवाड़ की शक्ति बहुत बढ़ गयी। राणा कुम्भा ने लगभग १४३३ से १४६९ ई० तक राज्य किया। उसने मालवा और गुजरात के साथ अनेक युद्ध किये। मालवा के सुलतान पर विजय पाने के उपलक्ष में उसने चित्तौड़ में जयस्तम्भ या कीर्तिस्तम्भ स्थापित किया था। उसने मेवाड़ में अनेक दुर्ग और मन्दिरों का निर्माण कराया। वह स्वयं विद्वान, कवि और संगीतज्ञ था।

कुम्भा के उत्तराधिकारियों में राणा सांगा सबसे पराक्रमी और महत्वाकांक्षी शासक हुआ है। वह सन् १५०९ में

सुलतान हुआ। उस ने शासन प्रबन्ध को व्यवस्थित और उन्न किया। वारगल और विजयनगर के राजाओ के साथ उस युद्ध किये और विजयी हुआ। वारगल के राजा से उस गोलकुंडा छीन लिया। इन युद्धो का कारण रायचूरका दोआ था। यह दोआव कृष्णा और तुंगभद्रा नदियो के बीच का प्रदेश है। इसके कारण विजयनगर और वहमनी राज्य के बीच बरावर तब तक युद्ध चलता रहा जब तक दोनो राज्य कायम रहे।

केवल मुहम्मद द्वितीय (१३७८–१३९७) के समय में विजयनगर से कोई लडाई नही हुई, क्योकि यह सुलतान शांति और विद्या प्रेमी व्यक्ति था। लेकिन उसके बाद ताज-उद्दीन फीरोज (१३९७–१४२२) के समय में फिर विजय-नगर से युद्ध होने लगा। युद्ध का कारण वही रायचूर दोआव था। प्रारम्भ में फीरोज की जीत हुई लेकिन अन्तिम आक्रमण में उसे विजयनगर के राजा ने पछाड दिया। उसके बाद उसके भाई अहमद शाह (१४२२–१४३५) ने विजय-नगर के राजा को परास्त करके पिछली हार का बदला लिया। उसने वारगल के राजा को मारकर उसका राज्य अपने राज्य में मिला लिया। उसने मालवा के सुल्तान को भी हराया तथा गुलबर्गा के बजाय बीदर को अपनी राजधानी बनाया।

किन्तु इसके समय से दक्षिणी या भारतीय अमीरो और विदेशी अमीरों में झगडे भी शुरू हो गये जिनके कारण बह-मनी राज्य की शक्ति पर बहुत बडा आघात लगा और अन्त

से उसका सर्वनाश हो गया।

अहमद के बाद उसका लडका अलाउद्दीन अहमद (१४३५–१४५८) सुल्तान हुआ। इसने भी विजयनगर के राजा को युद्ध में हराया और कर वसूल किया (१४४३ ई०)। उसने बिदर में कई मस्जिदे, मदरसे और अन्य इमारतें बनवायी। उसका लडका हुमायू (१४५८–६१ ई०) एक जालिम शासक निकला। अत उसके समय से बहमनी सुलतानो का पतन शुरू हो गया।

हुमायू का लडका मुहम्मद तृतीय (१४६३–१४८२) जब गद्दी पर बैठा तो वह नाबालिग था। इसलिए राजामाता ने राज्य के शासन प्रबन्ध का कार्य सुयोग्य मंत्री महमूद गावान् को सौंपा। बहमनी सुलतानो की कमजोरी की वजह से प्रान्तीय अमीर बहुत प्रबल हो उठे थे और बहमनी राज्य समाप्त होने पर था। लेकिन गावान् ने अपनी नीति–कुशलता से राज्य को खण्डित होने से बचा लिया।

महमूद गावान् ने शासन के प्रत्येक विभाग तथा सेना में सुधार किये। उसने बडी भक्ति के साथ बहमनी राज्य की सेवा की और उसका विस्तार किया। किन्तु ईरानी होने से दक्षिणी अमीर उससे जलते और ईर्षा करते थे। दक्षिणी अमीरो ने यह कहकर सुलतान को भडकाया कि महमूद गावान् विजयनगर के राजा से मिलकर स्वय सुल्तान बनने की चेष्टा कर रहा है। शराब में बदहोश हुए सुल्तान ने बिना सोचे-विचारे अपने भक्त और योग्य मंत्री गावान् को कत्ल करवा दिया।

गांवान् की मृत्यु के बाद वह मनीराज्य अधिक न टिका। मुहम्मद तृतीय की मृत्यु होने पर महमूद तख्त पर बैठा। वह निबल और निकम्मा शासक था। समय में अमीरो के आपसी झगडे बढ चले और प्रान्तीय स्वतन्त्र बन बैठे।

फलत बहमनी सुल्तान का अधिकार राजधानी के आस-पास ही सीमित रह गया। १५२७ म बहमनी सुल्तानो का राज्य बिलकुल मिट गया। बहमनी सुलतानो ने लगभग १८० वर्षा तक राज्य किया।

बहमनी राज्य के टूटने पर प्रान्तीय शासको ने निम्न पाच राज्य कायम किये थे– (१) बीजापर का आदिलशाही राज्य (२) अहमदनगर का निजाम शाही राज्य (३) बरार का ईमादशाही राज्य (४) बीदर का बरदिशाही राज्य और (५) गोलकुण्डा का कुतुबशाही राज्य।

इन पाच राज्यो में से बरार सबसे पहले स्वतन्त्र हुआ था। सन् १५७४ म अहमदनगर के बादशाह ने उसे जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। बीदर का राज्य १५२७ से लगभग १६०९ तक कायम रहा और अन्त मे बीजापुर न उसे अपने राज्य मे मिला लिया। गोलकुण्डा का राज्य वारगल या तिलगाना के हिन्दू राज्य को नष्ट करके जन्मा था। यह राज्य औरगजेब के समय तक कायम रहा। अहमदनगर का राज्य १४९० मे स्थापित हुआ था। शाहजहा के समय यह राज्य मुगल साम्राज्य मे मिला लिया गया।

बीजापुर का राज्य सन् १४८९ में स्थापित हुआ था। औरंगजेब ने गोलकुण्डा की तरह इसे भी अपने राज्य में मिला लिया था। बहमनी राजाओं की तरह इन राज्यों का भी विजयनगर के राजाओं में युद्ध होता रहा। अन्त में इन राज्यों ने मिलकर तालीकोटा के युद्ध में विजयनगर को पछाड़ दिया।

विजयनगर राज्य

मुहम्मद तुगलक के समय में मदुरा के सुलतान की देखा-देखी कई हिन्दू सरदार भी दिल्ली से स्वाधीन हो गये थे। सन् १३३५ में मदुरा स्वतन्त्र हुआ था और उसके दूसरे ही वर्ष सन् १३३६ में होयसल राजा के अनागुण्डी (तुगभद्रा के उत्तरी तट पर एक दुर्ग) के दो सरदारों हरिहर और उसके भाई बुक्का ने तुगभद्रा के दक्षिणी तट पर विजयनगर नाम के नगर और राज्य की स्थापना की थी। इस नगर और राज्य की स्थापना में,कहते हैं उन्हें अपने समय के प्रकाण्ड पंडित विद्यारण्य और सायण से बहुत सहायता मिली थी। विद्यारण्य इन भाइयों का गुरु था। अतः अपने बसाये नगर का नाम उन्होंने विद्यानगर अथवा विजयनगर रखा। किन्तु यह भी कहा जाता है कि विजयनगर राज्य की नींव होयसल राजा वीर बल्लाल तृतीय ने डाली थी और बाद में उसे हरिहर और बुक्का ने पूरा किया था। वीर बल्लाल तृतीय के उत्तराधिकारी की मृत्यु के बाद (१३४६) होयसल राज्य पर उनका अधिकार हो

नदी के तट तक अपने राज्य का विस्तार किया ।

विजयनगर राज्य धीरे-धीरे दक्षिण का .विजय.. राज्य बन गया। मेवाड़ के सीसोदियो की तरह विजयन.. के राजाओ ने दक्षिण में मुस्लिम शक्ति की बाढ को एकदम रोक दिया । यदि विजयनगर का राज्य पैदा न हुआ होता तो संभव था कि बहमनी राज्य पूरे दक्षिण पर छा जाता। धन शक्ति के लिए विजयनगर और बहमनी राज्यो के बीच अन्त तक संघर्ष होता रहा।

विजयनगर के राजाओ के पहले वंश ने सन् १४८७ तक राज्य किया। विजयनगर और बहमनी सुल्तानो के बीच में जैसा कि पहले बतला चुके है, रायचूर दोआब के लिए ही झगड़े हुए । अत बुक्का के उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीय के समय से बहमनी सुल्तानो के साथ बराबर लडाइया होती ही रही।

हरिहर द्वितीय (१३७९-१४०६) ने रायचूर पर आक्रमण किया, किन्तु बहमनी सुलतान फीरोजशाह से उसे परास्त होना पड़ा । हरिहर ने दक्षिण के अधिकांश भागो को अपने राज्य में मिलाया । मैसूर, त्रिचनापली और कांची उसके राज्य मे शामिल थे। उसके उत्तराधिकारी देवराय प्रथम और देवराय द्वितीय (१४२२-१४४६) ने बहमनी सुलतानों से युद्ध किये , लेकिन पराजित हुए।

देवराय द्वितीय अपने वंश का सबसे प्रख्यात राजा हुआ। उसने शासन का व्यवस्थित किया और बहमनी सुल्तान

माथा लेने के लिए मुस्लिम सैनिकों को सेना में भरती ।। उसके समय में विजयनगर राज्य की खूब समृद्धि और उन्नति हुई। फारस का दूत अब्दुर्रज्जाक उसके समय में विजयनगर आया था। विजयनगर के राजा की समृद्धि और शक्ति का उसने विशद् वर्णन किया है। उसने लिखा है कि विजय नगर के जैसा नगर दुनिया में न देखा गया है, न सुना गया।

किन्तु देवराय के उत्तराधिकारी निर्बल निकले। अतः उड़ीसा के हिन्दू राजा और बहमनी के सुलतानों ने विजयनगर पर जोरों से आक्रमण शुरू कर दिये। इन उत्पातों को देखकर चन्द्रगिरी के सरदार नरसिंह सल्व ने १४८६ में विजयनगर पर अधिकार कर लिया। किन्तु उसके वंश ने अधिक दिन तक राज्य न किया। सन् १५०५ में वीर नरसिंह तुलुव ने सल्व के उत्तराधिकारी को हटाकर विजयनगर का राज्य हस्तगत कर लिया।

इस प्रकार विजयनगर में तीसरे तुलुव वंश का राज्य आरम्भ हुआ। वीर नरसिंह का उत्तराधिकारी और भाई कृष्णदेव राय (१५०९–१५३०) विजयनगर का सब से महान् और भारतीय राजाओं में बहुत प्रतापी व यशस्वी राजा हुआ। उसने राज्य की सुव्यवस्था की, आन्तरिक विद्रोहों को दबाया और राज्य की सीमाओं का प्रसार किया। दक्षिणी मैसूर के तथा अन्य विद्रोही सरदारों को उसने अपने अधीन किया। उसने बीजापुर से रायचूर दोआब भी छीन लिया था। उड़ीसा के राजा को भी उसने कई बार युद्ध में पछाड़ा।

उड़ीसा के राजा ने उसे अपनी लड़की विवाह में दी और कृष्णा नदी को उसके राज्य की सीमा स्वीकार कर लिया। सन् १५२० में कृष्णदेव राय ने बीजापुर के सुलतान आदिलशाह को बुरी तरह से पराजित किया। उसके समय में पुर्तगालियों ने गोआ पर अधिकार कर लिया था। उनके साथ कृष्णदेव राय का मैत्री सम्बन्ध रहा।

कृष्णदेवराय के समय में विजयनगर राज्य ने आश्चर्य-जनक उन्नति की। कह सकते हैं कि इस समय विजयनगर राज्य अपने उत्कर्ष की चरम सीमा को पहुंच गया था। कृष्णदेव राय कला और साहित्य का भी महान् प्रेमी और संरक्षक था। वह उदार और प्रजा हितैषी राजा था।

कृष्णदेव राय के उत्तराधिकारी कमजोर निकले। फलतः धीरे-धीरे विजयनगर का ह्रास होने लगा। सदाशिव राय (१५४२–१५७०) के समय में दक्षिण के मुस्लिम सुलतानों

अध्याय १३

उत्तर मध्यकाल का भारत

राजपूत और तुर्क

यह एक गम्भीर प्रश्न है कि तुर्कों का आक्रमण होने पर राजपूत क्यो हारते ही चले गये और अपनी राजनैतिक प्रभुता स हाथ धो बैठे ? क्या इसका कारण शारीरिक बल और स्फूर्ति की कमी थी ? क्या राजपूत तुर्कों के मुकाबले कम वीर और योद्धा थे ? इतिहास के अध्ययन से हमें पता लगता है कि वीरता और साहस म राजपूत तुर्कों से कम क्या बढ कर ही थे। आनन्द पाल की तरफ से लडते हुए खोखरो ने महमूद गजनवी को एक बार भागने तक को विवश कर दिया था। मुहम्मद गोरी को गजरात के राजा से बहुत बुरी हार उठानी पडी थी। जिस पृथ्वीराज को समाप्त करके गोरी ने हिन्दुस्तान में तुर्क सल्तनत की स्थापना की उसी पृथ्वीराज से वह पहले बुरी तरह से पराजित हुआ था । इसलिए यह तो नही कहा जा सकता कि राजपूत बल और साहस में तुर्कों स

स थे और इसीलिए शायद हारे होगे। इसके अलावा स्वदेश और स्वधर्म के प्रति प्रेम और भक्ति की भी राजपूतो म कोई कमी न थी। महमूद गजनवी के विरुद्ध कई राजाओ ने मिलकर जयपाल और आनन्दपाल को सहायता पहुँचायी थी।

लेकिन आश्चर्य है कि तब भी राजपूत हारे। अल्बेरुनी ने हिन्दुओ के बहुत से गुणो की प्रशसा करते हुए लिखा है कि उनका सबसे बडा दोष यह है कि वे अपने और अपने देश से बढ कर किसी को नही समझते। उसी ने यह भी कहा है कि यदि हिन्दू लोग अपने पूर्वजो की तरह दुनिया की यात्रा करते और दूसरे देशो के लोगो से मिलते-जुलते तो वे ऐसे सकुचित विचार के नही हो सकते थे। नि सन्देह मध्यकाल के हिन्दुओ के ये सकुचित विचार बडे घातक साबित हुए है। इन सकुचित विचारो के कारण हिन्दुओ ने दुनिया से नाता सा तोड लिया था और अपनी दुनिया को अपने ही तक सीमित कर लिया था। परिणाम यह हुआ कि वे दुनिया म होने वाली नयी हलचलो से बेखबर होते गये और अपने को परिस्थितियो के अनुसार तैयार न रख सकने से ही उन्होने पराजित होकर सब तरह से दुख उठाये।

विचारो की सकीर्णता के साथ हिन्दुओ म जाति-भेद बढ जाने से सामाजिक एकता टूट गयी थी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू मिल कर शत्रु का सामना न कर सके। देश की रक्षा और शासन का उत्तरदायित्व अकेले क्षत्रियो पर समझा गया और शेष जातियो के लोग तटस्थ रहने लगे। फलत भारत पर जब-

जब आक्रमण हुए तब-तब जनता के सब वर्गों ने मिल कर शत्रु का सामना कभी नहीं किया। एकता का यह अभाव ही हिन्दुओं की पराजय का सबसे बड़ा कारण था।

सामाजिक एकता के साथ राजनैतिक एकता का भी अभाव था। सारा देश अनेक राज्यों में बटा हुआ था, जिन में पारस्परिक सहयोग की अपेक्षा वैर ही अधिक था। मुहम्मद गोरी ने जब पृथ्वीराज पर आक्रमण किया तो गहड़वाल राजा जयचन्द्र और चन्देल राजा परमार्दि दूर से तमाशा देखते रहे। उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि उनका एक शत्रु नष्ट हो रहा है। किन्तु गोरी ने तमाशा देखने वाले जयचन्द्र को भी बाद में समाप्त कर दिया। यदि राजपूत बाहरी शत्रुओं से खतरे के समय कुछ समय के लिए आपस के झगड़ों को भूल कर एका कर सकते, जैसा कि आनन्दपाल के समय में उन्होंने किया भी था, तो हिन्दू जाति की ऐसी पराजय कभी न होती।

राजपूतों में राजनैतिक चेतना और दूरदर्शिता की भी कमी थी। उन के युद्ध अधिकतया रक्षात्मक ही रहे हैं। उन्होंने कभी भी शत्रु के घर में घुस कर उस पर प्रहार करने का प्रयत्न नहीं किया। अतः वे लड़ना और मरना तो जानते थे, किन्तु उन में देशों को विजय करने और राज्य को बढ़ाने की महत्वाकांक्षा का अभाव था। आपस में ही लड़ने-भिड़ने में उन्होंने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली थी। सीमान्त की रक्षा के प्रति भी वे चौकन्ने न रहे। उन में बड़प्पन और अहम्मन्यता इतनी बढ़ गयी थी कि समस्त देश पर

गतागत आया देख कर भी वे एक नेतृत्व म नहीं बध सके। पृथ्वीराज के नेतृत्व म गहडवाल और चन्देल मिलकर गोरी से लडते तो सभव था कि गोरी पुन ऐसा पराजित होकर भागता कि फिर भारत की तरफ नजर भी उठाने का साहस न करता और देश तुर्कों की गुलामी से बच जाता। इसी तरह जब मुहम्मद गोरी ने पजाब के सुलतान खुसरु मलिक पर हमला किया था, तब जम्मू के हिन्दू राजा ने भारत के महान् शत्रु गोरीको सहायता दी। वीर पृथ्वीराज ने भी खुसरु मलिक को बचाने के लिए हाथ नहीं बढाया। उस समय यह चाहिए था कि सब भारतीय राजा खुसरु मलिक की सहायता करते और गोरी को सिन्धु नदी पार न होने देते।

सैन्य सचालन और सगठन का भी राजपूतो मे अभाव था। स्थायी सेना कम होती थी। युद्ध के समय सामन्तो की सेना से मदद ली जाती थी। अत सख्या काफी होने पर भी कुशल नेतृत्व और सचालन की कमी से उनकी सेना का रूप एक अनियन्त्रित भीड के समान हो जाता था। नेता के गिरते ही यह भीड तितर-बितर हो जाती थी। शस्त्रो मे भी राजपूतो ने विशेष उन्नति न कर पायी थी।

राजपूतो म धार्मिक अन्ध-विश्वास भी बहुत बढ गया था। सोमनाथ पर जब आक्रमण हुआ तो उनको यह भरोसा था कि महादेव स्वय यवनो का सहार कर देंगे। कूटनीति तो वे समझते ही न थे। युद्ध म पीठ दिखाना, छिप कर आघात मारना आदि वे धर्म और युद्धनीति के विरुद्ध समझते थे।

वीरतापूर्वक लडते-लडते प्राण दे देना, वे अपना प्रमुख कर्त्तव्य और धर्म समझते थे। अपने धर्म और परलोक का उन्हे इतना अधिक विचार रहा कि वे इहलोक को ही खो बैठे।

दूसरी ओर तुर्क आक्रमणकारियो मे सामाजिक विषमता न होने से पूरी एकता थी। इस्लाम के भ्रातृत्व के सिद्धात ने उन्हे एक झडे के नीचे सगठित कर दिया था। उन मे गरीब, अमीर और ऊच-नीच के भावो की विषमता न थी। गुलाम तक के लिए बादशाह बनना सम्भव था। उन के बराबरी के बर्ताव ने उन्हे बल प्रदान किया। इसलिए यद्यपि तुर्कों और अफगानो मे आपसी भेद, ईर्ष्या आदि मौजूद थे तो भी परधर्मियो के साथ लडने के समय वे एक हो जाते थे और एक नेतृत्व मे काम करते थे।

तुर्क आक्रमणकारी कुशल तीरन्दाज और सवार थे। कूटनीति और छल-बल से काम लेना उनका स्वभाव था। योग्य नेतृत्व की भी उनमें कमी न थी। महमूद गजनवी एक कुशल नेता और सेनापति था। इस्लाम धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए उनमे अपूर्व जोश था। नये-नये देशो को विजय करने और इस्लाम-धर्म की पताका फहराने की उमग भरी महत्त्वाकाक्षा उनके मनमे विद्यमान थी। एक अपरिचित देश पर महमूद गजनवी का १७ बार आक्रमण करना उसके अपूर्व साहस का द्योतक है। इस्लाम के प्रचार और राज्य के विस्तार की महत्त्वाकाक्षा से प्रेरित होकर अलाउद्दीन खिलजी ने विश्व-विजय तक की योजना बना डाली थी। अव्यवहारिक होने से

यह योजना यद्यपि पूरी नहीं हुई, तो भी भारत के ;ओर से छोर तक तो उसने तुर्क पताका को फहरा ही दिया। इसलिए ऐसे जोश, उमंग और महत्वाकांक्षा से पूर्ण तुर्कों के लिए प्रमादी, कलह-प्रिय, अहंकारी राजपूतों के ऊपर विजय पाना कोई कठिन कार्य न था।

तुर्कों की असफलता

किन्तु शासन की दृष्टि से तुर्क व अफगान शासक सफल न हो सके। इस्लाम के जोश पर विजय पाना तो सरल था, लेकिन इस्लाम के आधार पर हिन्दुस्तान में राज्य करना उनके लिए घातक सिद्ध हुआ। दिल्ली के तुर्क व अफगान सुलतानों में बहुत कम ऐसे हुए जिन्होंने उदारता की नीति से काम लिया और समस्त प्रजा को एक समान समझा हो। ज्यादातर सुल्तान मुल्ला और मौलवियों की सलाह से ही राज्य करते रहे। परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं के धर्म पर रोक-थाम की गयी और जजिया आदि लगा कर उन्हें दबाया गया। उनको निर्बल और अशक्त बनाने के लिए उन पर अत्यधिक कर लादे गये। अत. इन धार्मिक और आर्थिक दमन के कारण तुर्क सल्तनत की स्थापना से लेकर अंत तक मेवात, दोआब, कटेहर आदि के हिन्दू बराबर विद्रोह करते रहे और उन्होंने दिल्ली के सुलतानों को कभी चैन न लेने दिया। ये विद्रोह गुलाम सुल्तानों के समय से लेकर अफगान व लोदी सुल्तानों के समय तक बराबर होते ही रहे। स्वभावतः इन विद्रोहों का परिणाम तुर्क सल्तनत के लिए विनाशकारी साबित हुआ। इसलिए यह कहते

जात है। ये सभवतया १४ वी शताब्दी के अन्त और १५ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे रहे होगे। इन का जन्म बनारस म हुआ था। इन्हे एक मुस्लिम जुलाहे ने पाला-पोसा था। रामानन्द के अलावा सूफी सन्तो के उदार विचारो का भी इन पर असर पडा था। अत उन्होंने ऐसे उपदेश दिय जिन से विभिन्न जातियो और धमा म परस्पर प्रेम और मेल-जोल पैदा हो। उन्होंने रामानन्द की तरह जात-पात, मूर्ति-पूजा आदि का खडन किया और राम के रूप में एक निराकार ब्रह्म की भक्ति करने पर जोर दिया। उन्होने हिंसा को त्याग कर लोगो को अहिंसा और दया-धर्म का मार्ग ग्रहण करने की शिक्षा दी। उन्होने हिन्दू और तुर्कों को एक ही मिट्टी का बना हुआ बतलाया और राम-रहीम तथा काशी और काबाको एक सा समझने की शिक्षा दी ।

काबा फिर काशी भया, राम भया रहीम।

अनेक देवी-देवताओ की पूजा छोडकर कबीर ने हिन्दुओ को एक राम को भजने के लिए कहा—

एक जन्म के कारणे कत पूजो देव सहँसो रे।
काहे न पूजो रामजी जाके भक्त महसो रे॥

दूसरी तरफ उन्होने मुसलमानो को समझाया कि अल्ला और करीम, पूजा और नमाज को लेकर हिन्दुओ से झगडते क्यो हो, क्योकि असल मे ये सब एक ही ईश्वर और एक ही विधि के दो नाम व तरीके है।

दुइ जगदीश कहा ते आवे वह कौने भरमाया।
अल्ला, राम, करीमा, कसा हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक त गहना ता म भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ करि थापे एक नमाज एक पूजा॥

साधारण हिंसा और गाय-बकरी की हत्या को लेकर भी उन्होंने मुसलमानो को खूब फटकारा--

दिन भर रोजा रहत हैं, राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय॥
अपनी देखि करत नही अहमक, कहत हमार बडन किया।
उसका खून तुम्हारी गरदन जिन तुम को उपदेश दिया॥
बकरी पाती खाति है ताकि काढि खाल।
जो नर बकरी खात है तिनका कौन हवाल॥

भत कबीर ने दयामय धर्म पर बहुत जोर दिया है--

जहा दया तह धर्म है, जहा लोभ तह पाप।
जहा क्रोध तह मृत्यु है, जहा छिमा तह आप॥

ज्ञानदेव और नामदेव

इसी प्रकार महाराष्ट्र में ज्ञानदेव और नामदेव नाम के दो प्रसिद्ध सत हुए। इनमें से नामदेव बहुत प्रसिद्ध माने जाते हैं। उन्होंने भक्ति-मार्ग का प्रचार किया और हिन्दू-मुसलमान दोनों को धर्म के मामले में अधा बतलाया---

हिंदू अधा तुरकू काना, दुहू ते ज्ञानि सयाना।
हिंदू पूजै देहुरा, मुसलमान मसीत॥
नामा सोई सेविआ जहा देहुरा न मसीत॥

ज्ञानदय

वल्लभाचार्य

राम की जगह कुछ वैष्णव सतो न कृष्ण के रूप मे की उपासना का उपदेश दिया। राम भक्ति की तरह कृष्ण भक्ति को परम कर्त्तव्य बतलाया। सत बल्लभाचार्य शाखा के प्रमुख प्रवर्त्तक थे। इनका जन्म १५वी शताब्दी के में बनारस म हुआ था। विजयनगर के राजा कृष्णदेवराय ये समकालीन थे। उन्होने कृष्णको परब्रह्म बतलाया उनकी भक्ति व प्रेम पर जोर दिया। अपने धर्म का भारत के कई स्थानो म जाकर प्रचार किया।

चैतन्य

कृष्णभक्ति शाखा के वैष्णव सतो म चैतन्य (१४८५ १५३३) का नाम बहुत विख्यात है। ये बगाली थे। इनका जन्म नदिया के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वल्लभाचार्य की तरह उन्होने भी भारत के कई स्थानो में जाकर कृष्ण-भक्ति और प्रेम का उपदेश दिया। चैतन्य प्रभु ने जाति-पाति के भेदों को त्याग कर केवल कृष्ण-प्रेम को मुक्ति का मार्ग बतलाया। उनक शिष्यो मे बहुत से नीच जाति के हिन्दू और यवन हरीदास नामका एक मुसलमान शिष्य भी था।

नानक

इस युग में पजाब म भी एक महान् सुधारक ने जन्म लिया। यह सुधारक सिख धर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक थे। इनका जन्म १४६९ में ननकाना में हुआ था, जो आज कल सिक्खो का एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। कबीर की तरह उन्होंने

गुरु नानक

हिन्दू और मुस्लिम सम्पर्क का प्रभाव भाषा के क्षेत्र म ...हैं। फारसी, अरबी और तुर्की तथा हिन्दी के मेल से नयी लोक-भाषा का विकास हुआ जो पीछे उर्दू कहलाई। वह एक ऐसी भाषा थी जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनो समझते थे।

ग्रन्थकार

इस प्रकार भाषा के क्षेत्र मे दोनो म एकता पैदा हुई। इस एकता के परिणाम स्वरूप ही कुछ ऐसे मुसलमान लेखक हुए जिन्होंने हिन्दी भाषा को अपनाया और हिन्दू-गाथाओ को लेकर ग्रन्थ रचनाकी। मुहम्मद जायसी का पद्मावत इसका उदाहरण है। इसी तरह कुछ ऐसे हिन्दू लेखक भी हुए जिन्होंने मुस्लिम साहित्य की परम्परा पर फारसी भाषा म ग्रन्थ लिखे। आगरा और दिल्ली प्रान्तो में बोली जाने वाली लोक-भाषा का पहला प्रख्यात कवि अमीर खुसरो हुआ।

संस्कृत साहित्य को भी मुसलमान शासको से काफी प्रोत्साहन मिला। दिल्ली के सुल्तान फीरोज तुगलक और सिकन्दर लोदी ने संस्कृत भाषा के ग्रन्थो का फारसी में अनुवाद कराया। बगाल के सुलतानो ने भी इसी तरह संस्कृत से अनुवाद कराये।

कला

हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क का प्रभाव ललित कलाओ पर भी पड़ा। दोनो के मेल ने वास्तुकला व संगीत-कला में नयी प्रकार की शैलियां प्रचलित हुई। तुर्की विजेता अपने साथ वास्तुकला

भी एक ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया और दोनें व मुसलमानो को उनकी मूर्खता के लिए फटकारा। हिन्दू मुसलमानो मे आपसी मेल तथा मनुष्य मात्र मे भ्रातृ-भाव करने के लिए वे जीवन भर उपदेश करते रहे। नानक ने और दभ को त्याग कर सदाचार पर बहुत जोर दिया। ना के प्रचार का मुसलमानो पर भी बहुत प्रभाव पडा और उन से बहुतो ने सिक्ख-धर्म ग्रहण किया।

प्रान्तीय भाषाओं का विकास और उन्नति

सत सुधारकों ने विभिन्न प्रान्तीय भाषाओ विकास मे भी योग दिया है। रामानन्द और ने हिन्दी मे प्रचार किया और हिन्दी कविता भडार को बढाया। रामानन्द के शिष्य-मडल ने मे सत-मत का प्रचार करने के लिए मनोरम हिंदी कविताओ की रचना की। रविदास आदि सतो की देन हिन्दी भाषा मे अनूठी है। नामदेव ने मराठी में प्रचार करके मराठी साहित्य की श्रीवृद्धि की तथा नानक ने पजाबी व गुरूमुखी के साहित्य को बढाया। इसी तरह बगाल के वैष्णव सतो ने बगला भाषा मे रचना करके उसकी श्रीवृद्धि की। बगाल के मुस्लिम शासकों ने भी बगला भाषा को प्रोत्साहन दिया। १५ वी शताब्दी मे रामायण की बगला भाषा मे रचना हुई। हुसेन शाह के दरबार म नसरुन भाषा मे बगला भाषा में धर्म ग्रथो के अनुवाद का कार्य आरभ हो गया था। उसी के पुत्र नुसरत शाह के दरबार में महाभारत बगला भाषा मे लिखा गया। इसी तरह विजयनगर के राजाओ ने तेलगु साहित्य को प्रोत्साहन दिया।

हिन्दू और मुस्लिम सम्पर्क का प्रभाव भाषा के क्षेत्र मे स्पष्ट है। फारसी, अरबी और तुर्की तथा हिन्दी के मेल से एक नयी लोक-भाषा का विकास हुआ जो पीछे उर्दू कहलाई। यह एक ऐसी भाषा थी जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनो समझते थे।

ग्रन्थकार

इस प्रकार भाषा के क्षेत्र में दोनो मे एकता पैदा हुई। इस एकता के परिणाम स्वरूप ही कुछ ऐसे मुसलमान लेखक हुए जिन्होंने हिन्दी भाषा को अपनाया और हिन्दू-गाथाओं को लेकर ग्रन्थ रचना की। मुहम्मद जायसी का पद्मावत इसका उदाहरण है। इसी तरह कुछ ऐसे हिन्दू लेखक भी हुए जिन्होंने मुस्लिम साहित्य की परम्परा पर फारसी भाषा में ग्रन्थ लिखे। आगरा और दिल्ली प्रान्तों मे बोली जाने वाली लोक भाषा का पहला कवि अमीर खुसरो हुआ।

संस्कृत साहित्य को भी मुसलमान शासकों से काफी प्रोत्साहन मिला। दिल्ली के सुल्तान फीरोज तुगलक और सिकन्दर लोदी ने संस्कृत भाषा के ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया। बंगाल के सुल्तानों ने भी इसी तरह संस्कृत से अनुवाद कराये।

कला

हिन्दू-मुस्लिम सम्पर्क का प्रभाव ललित कलाओं पर भी पड़ा। दोनो धर्मों के वास्तुकला व संगीत-कला में नया प्रकार की शैलियाँ पर्याप्त हुईं। तुर्की विजेता अपने साथ वास्तुकला

सिकन्दर लोदी का मकबरा

के कितने ही आकर्षक नमूने और प्रकार लाये थ। इन प्रकारो और भारतीय कला के प्रकारो के मिश्रण से ही भारतीय वास्तु-कला मे नयी शैलियो का विकास हुआ। देहली की वास्तु-कला को छोड कर जिसमे मुस्लिम छाप अधिक है, शेष प्रान्तीय शैलियोमे भारतीय प्रभाव ही अधिक मिलता है। आवश्यकता-वश तुर्क आदि विजेताओ ने अपने भवनो के निर्माण के लिए भारतीय कारीगरो और शिल्पियो से काम लिया। इसलिए उनकी बनवायी इमारतो आदि में भारतीय प्रभाव का होना स्वभाविक ही था। बहुत बार मुस्लिम विजेताओ ने हिन्दू मन्दिरो को तोड कर उन्ही के सामान से मस्जिदो का निर्माण कराया और कभी अपने धार्मिक विचारो के अनुसार मन्दिरो की इमारतो मे थोडा बहुत परिवर्तन आदि करके उन्हे ही मस्जिद का रूप दे दिया। अत हिन्दू और मुस्लिम कला का मिश्रण इन कारणो से अनिवार्य हो गया था।

दिल्ली शैली के सबसे अच्छे नमूने कुतुब मीनार और उसी के पास का अलाउद्दीन खिलजी का बनवाया हुआ अलाई दरवाजा है, जो खिलजी वास्तुकला का बहुत उत्कृष्ट नमना माना जाता है।

प्रान्तीय शैलियो मे जौनपुर, गुजरात, मालवा, बगाल, गुलबर्गा आदि के नाम प्रख्यात है। जौनपुर की बहुत-सी इमारतें मंदिरो के सामान से बनायी गयी थी और बनाने वाले भी हिन्दू कारीगर थे। अत वहाँ की कला पर हिन्दू प्रभाव स्पष्ट है।

जौनपुर की अटाला मस्जिद जौनपुर कला का उत्कृष्ट नमूना मानी जाती है।
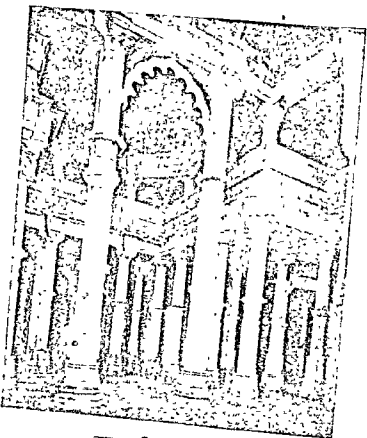
जामा-मस्जिद अहमदाबाद

बंगाल की मुस्लिम इमारतें भी इसी प्रकार हिन्दू मंदिरों शैली से प्रभावित है। सुलतान सिकंदरशाह की बनवायी

पण्डुआ की अदीना मस्जिद बंगाल वास्तुकला का बहुत सुन्दर नमूना है। गुजरात में भी इसी प्रकार मुस्लिम इमारतों के निर्माण में गुजरात में प्रचलित हिन्दू-शैली की स्पष्ट छाप है। मालवे में धार की मुस्लिम इमारतों में भी हिन्दू शैली का प्रभाव देख पड़ता है। लेकिन माण्डू की इमारतें दिल्ली शैली की नकल है।

इसी समय विजय नगर में हिन्दू कला ने भी अपूर्व उन्नति की। वहाँ के राजे ललित कलाओं,साहित्य आदि के बहुत प्रेमी थे। उन्होंने वास्तुकला, शिल्प-कला और चित्र-कला को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया था। विट्ठलस्वामी का मंदिर विजयनगर की वास्तुकला का एक बहुत अच्छा नमूना समझा जाता है।

विजय नगर में वहाँ के राजाओं के प्रोत्साहन से संगीत की भी खूब उन्नति हुई। इसी तरह उत्तरी भारत में अमीर खुसरो के प्रयत्न से नये प्रकार के गीत बने और रागों में भी उसने कई नयी शैलियां चलायी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१–राजपूतों की पराजय के क्या कारण थे ?

२–तुर्कों के विरुद्ध हिन्दुओं के विद्रोह के क्या कारण थे?

३–उत्तर-मध्य-काल में सामाजिक जीवन किस प्रकार का था ?

४–उत्तर-मध्य-काल में प्रमुख धार्मिक सुधारक कौन-कौन हुए हैं ? उनके उपदेशों का क्या परिणाम हुआ ?

५–उत्तर-मध्य-काल में वास्तुकला की कैसी उन्नति हुई ? उस समय की बनी प्रसिद्ध कौन-कौन इमारतें हैं ?
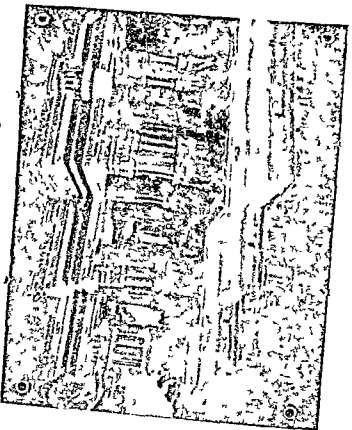
बिट्ठल स्वामी का मन्दिर

अध्याय १४

मुगल-राजवंश की स्थापना

बाबर का आक्रमण

भारत के इतिहास मे १६वी शताब्दी का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस शताब्दी के प्रारम्भ ने भारत मे मुगल राजवंश की स्थापना को देखा है। इस वंश का राज्य-काल भारत के इतिहास मे सबसे लम्बा और गौरवशाली रहा है।

बाबर को निमंत्रण,

पहले कह आये है कि १६ वीं शताब्दी के आरम्भ मे दिल्ली मे लोदी सुलतानो का राज्य था। प्रथम दो लोदी सुलतानो ने गिरती हुई दिल्ली-सल्तनत को फिर बनाने के लिए काफी काम किया था, किन्तु उन के बाद जब इब्राहीम लोदी सुल्तान हुआ तो सल्तनत की दशा फिर बिगडने लगी थी।

इब्राहीम घमंडी व्यक्ति था। उसने उन अफगान सरदारों को दबाने का प्रयत्न किया जिन्हें उसके पूर्वज बराबरी का मानते थे। उसकी इसनीति से अफगानसरदार विद्रोही हो गये।

इब्राहीम में इतनी शक्ति न थी कि वह उन के विद्रोहों को दवा सकता।

इन विद्रोहों से दिल्ली सल्तनत बहुत कमजोर पड़ गयी। इसी समय मेवाड में राणा सग्रामसिंह या राणा सांगा की शक्ति प्रबल वेग से बढ़ती जा रही थी। राजपूताना के अनेक राज्यों ने उसे अपना नेता मान लिया था। उसकी बढ़ती हुई शक्ति के सामने मालवे का मुस्लिम राज्य भी दब गया था। दिल्ली सल्तनत की आन्तरिक कमजोरी को देख कर वह उधर भी बढने लगा। इब्राहीम ने उसके बढ़ाव को रोकने के लिए दो बार उस पर चढाई की; लेकिन दोनों बार उसे स्वय पराजित होना पडा।

अतः इस समय उत्तरी भारत के साम्राज्य के लिए अफगान और राजपूतों मे सघर्ष छिड़ चुका था। सभव था, इस सघर्ष में सांगा के नेतृत्व में राजपूत विजय पा जाते, किन्तु भाग्य को कुछ और ही मजूर था। इसी समय पजाव के असन्तुष्ट विद्रोही अफगान सूबेदार दौलतखाँ लोदी ने इब्राहीम के विरुद्ध काबुल के मुगल बादशाह बाबर से मदद मांगी और दिल्ली पर चढाई करने को कहा। बाबर जो पहले से ही हिन्दुस्तान पर नजर गड़ाये बैठा था; इस निमंत्रण को पाकर फूला न समाया।

बाबर का प्रारंभिक जीवन

बाबर पिता की ओर से तैमूर का वंशज था और माता की ओर से चंगेज खा का। बाबर और उस के वंशजों को मुगल

कहा जाता है। लेकिन असल मे वह चगताई तुर्क था। लेकिन मा की तरफ से उस के रक्त में मुगल रक्त भी मिला हुआ था।

बाबर का जन्म सन् १४८३ मे हुआ था। उसका पिता उमर शेख मिर्जा मध्य-एशिया मे फरगना का शासक था। पिता की मृत्यु होने पर १२ वर्ष की अवस्था मे वह फरगाना के तख्त पर बैठा। वह बड़ा महत्वाकाक्षी था। वह समरकन्द पर अधिकार करना चाहता था। सन् १४९७ में मौका पाकर उसने समरकन्द पर अधिकार कर भी लिया। किन्तु इसी समय उसके वजीर ने विद्रोह करके फरगाना ले लिया। बाबर यह देखकर फरगाना की ओर दौड़ा। वह फरगाना को ले भी न पाया था कि उसी बीच समरकन्द पर भी एक उजबग सरदार ने अधिकार कर लिया। इस प्रकार फरगाना व समरकन्द दोनो उसके हाथ से निकल गये और वह मारा-मारा फिरने लगा। कुछ वर्षो तक वह फरगाना और समरकन्द पर अधिकार करने के प्रयत्न में लगा ही रहा, किन्तु सफल न हो सका। अत. उधर से निराश होकर बाबर ने अपना रुख बदला और सन् १५०४ मे उसने काबुल पर अधिकार कर लिया। कुछ समय बाद उसने पुन. ईरान के शाह की मदद से फरगाना व समरकन्द को लेने का प्रयत्न किया। किन्तु उजबग सरदारो ने उसे मध्य-एशिया से फिर मार भगाया। बाबर ने तब मध्य-एशिया से निराश हो कर हिन्दुस्तान की ओर बढ़ने का निश्चय किया।

भारत को जीतने की आकाक्षा उसके मन म बहुत पहले म

मौजूद थी। तैमूर का वंशज होने की वजह से वह भारत को अपनी सल्तनत समझता था। किन्तु भारत में घुसने का सुअवसर उसे तब प्राप्त हुआ जब पंजाब के विद्रोही सूबेदार दौलत खाँ लोदी ने उसे भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया। अतः निमंत्रण पाते ही बाबर ने पंजाब में घुसकर लाहौर पर अधिकार कर लिया। दौलत खाँ ने जब देखा कि बाबर पंजाब को स्वयं हड़प जाना चाहता है तो वह उसका विरोधी बन गया। इस स्थिति में बाबर ने आगे बढ़ना उचित न समझा और काबुल वापस लौट गया। लेकिन सन् १५२५ के अन्त में ही पूरी तैयारी के साथ वह फिर पंजाब पर आ धमका।

पानीपत का प्रथम युद्ध (१५२६)

दौलत खाँ को हराकर बाबर ने सहज ही में पंजाब पर अधिकार कर लिया। इसी समय इब्राहीमके कुछ विद्रोही अमीरों ने दिल्ली से बाबर को पत्र भेजे कि आक्रमणके समय वे उसकी सहायता करेंगे। कहते हैं, राणा सांगा ने भी इस अवसर पर बाबर को इब्राहीम के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया था। बाबर को इन वचनों से बहुत उत्साह मिला। उसने तब दिल्ली की ओर बढ़ना शुरू किया। इस समय उस के साथ कुल १२,००० सैनिक और एक अच्छा तोपखाना था।

बाबर को बढ़ता देखकर इब्राहीम भी अपनी एक लाख सेना लेकर पानीपत में आ डटा। लेकिन इब्राहीम की सेना बाबर से बहुत अधिक होने पर भी किसी काम की न थी। उसमें सैनिक अनुशासन और व्यवस्था का अभाव था। इब्रा-

हीम स्वय अयोग्य सेनापति था। बाबर अनुभवी और कुशल सेनापति था और उसके सैनिक भी युद्ध-कौशल में पूरी तरह से निपुण और सधे हुए थे। फलत २१ अप्रैल सन १५२६ को जब दोनो दलो में युद्ध छिडा तो बाबर की विजय हुई और इब्राहीम बुरी तरह से परास्त हुआ। इब्राहीम के हजारो सैनिक तथा वह स्वय लडाई में मारा गया। बाबर के तोपखाने ने इस युद्ध में बहुत काम किया।

इब्राहीम को हराने के बाद बाबर ने दिल्ली और आगरे पर अधिकार कर लिया। लेकिन अभी उत्तरी-भारत पर पूरी तरह से अधिकार करने के लिए उसे काफी कठिनाइयो का सामना करना बाकी था। इस समय मेवाड की शक्ति बहुत बढी हुई थी और वहाँ का राणा सागा दिल्ली पर दाँत लगाये हुए था। दूसरी तरफ कुछ ऐसे अफगान सरदार भी मौजूद थे जो बाबर को मार भगाने की घात म थे। इसलिए बाबर को अभी राजपूतो और अफगान सरदारो से भिडना था

खनवा (कनवाहा) का युद्ध

दिल्ली व आगरा पर अधिकार करके बाबर ने अफगान सरदारो को दबाने के लिए अपने सरदार रवाना किये और स्वय आगरे म राणा सागा से भिडने की तैयारी करने लगा।

हिन्दुस्तान को मुगल आक्रमणकारी से स्वतन्त्र करने के लिए राणा सागा ने अनेक राजपूत राजाओ और सरदारो को अपने झडे के नीचे एकत्रित किया। उसने हसन खा मेवाती तथा इब्राहीम के भाई महमद लोदी को दिल्ली का सुलतान
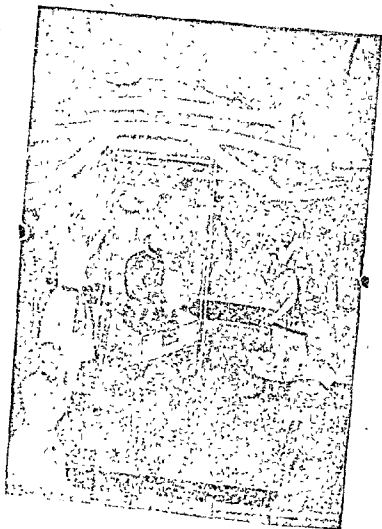
बाबर का दरबार

स्वीकार कर अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार तैयारी करके वह बाबर का मुकाबला करने के लिए आगरे की ओर बढ़ा। बाबर भी फौज लेकर उसकी ओर चला। आगरे के पश्चिम सीकरी के पास खनवा में दोनों दल आ डटे।

प्रारम्भ में राजपूतों की भारी सख्या को देख कर मुगल सैनिकों के होश-हवाश उड गये। उन्हे प्रतीत हुआ कि राजपूतों से पार पाना असभव है। इसी समय काबुल से आये एक ज्योतिषी ने भी यह भविष्यवाणी की कि लडाई म बाबर की जीत होना कठिन है। इस कथन से मुगलों का बचा-खुचा साहस भी काफूर हो गया। किन्तु बाबर कठिनाइयों से घबडाने वाला व्यक्ति न था। अपने सैनिकों का उत्साह बढाने के लिए, उसने इस अवसर पर शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और शराब के सारे बर्तन तुडवा दिये। उसने तब अपने सैनिकों और सरदारों को उत्साहित करने के लिए एक जोशीला भाषण दिया।

बाबर के भाषण ने उसके सरदारों और सैनिकों म प्राण फूक दिये। सब ने अन्त तक अपने नेता का साथ देना स्वीकार किया। मार्च सन् १५२७ को खनवा में मुगलों और राजपूतों मे भयकर युद्ध हुआ। राजपूतों ने अपूर्व वीरता दिखलायी, किन्तु बाबर के युद्ध-कौशल और तोपखाने ने अन्त म राजपूतों के पैर उखाड दिये। अनेक राजपूत युद्ध मे काम आये। राणा सागा स्वय घायल हुआ और उसके अग-रक्षक उसे युद्ध क्षेत्र से हटा ले गये। शेष राजपूत सेना भी भाग खडी हुई। इस हार के बाद राणा सागा चित्तौड वापस न गया और दो साल

नाद निराश अवस्था म उसकी मृत्यु हो गयी।

बावर की यह विजय पानीपत से भी अधिक महत्वपूर्ण थी। इस विजय ने उसके कट्टर राजपूत प्रतिद्वन्द्वी को नष्ट कर दिया। फलत बावर के लिए हिन्दुस्तान पर अधिकार करना बहुत सरल हो गया।

खानवा की विजय के बाद बाबर ने चन्देरी के मेदिनी राय पर आक्रमण किया। राजपूतो ने बडी वीरता से बावर का मुकाबला किया,लेकिन जीत न सके। बावर का चन्देरी दुर्ग पर भी अधिकार हो गया। इस हार से राजपूतो की रही-सही शक्ति भी टूट गयी।

विद्रोही पठान और नुसरतशाह

राजपूतो से निपटने के बाद बावर पूरब के विद्रोही अफगान सरदारो को दवाने के लिए सेना लेकर बगाल और विहार की ओर गया। सन् १५२९ में घाघरा नदी के किनारे उसने बगाल व विहार के अफगानो को युद्ध मे परास्त किया। बावर की ताकत से घवडाकर बगाल के सुलतान नुसरतशाह ने भी मुगल-विजेता से सधि कर ली।

बावर का अन्त

अफगानो को हराने के बाद बाबर अधिक दिन जीवित न रहा। घाघरा की लडाई के एक वर्ष के अन्दर ही वह बीमार पडा और सैंतालीस वर्ष की आयु मे परलोक सिधार गया। उसकी मृत्यु के बारे मे एक हृदयस्पर्शी कहानी प्रचलित है। बावर का बडा बेटा हुमायू सन् १५३० मे अपनी जागीर संभल मे बहुत

सख्त बीमार पड़ा। उसे बीमारी की हालत में ही आगरे लाया गया। बहुत दवा-दारू की गयी, लेकिन हुमायूं की दशा सुधरने पर न आयी। बाबर अपने प्यारे बेटे को बचाने के लिए तड़प उठा। उसने तब और उपाय न देखकर अपने बेटे की शय्या की तीन बार परिक्रमाएं कर ईश्वर से प्रार्थना की कि मेरे प्राण को ले-ले और मेरे बेटे के प्राण बचा दे। कहते हैं, उसी दिन से हुमायूं अच्छा होने लगा और बाबर बीमार पड़ गया। इस बीमारी से बाबर फिर अच्छा न हुआ और अन्त में २६ दिसम्बर १५३० को उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी लाश पहले तो आगरे में ही रखी गयी और बाद में काबुल ले जाकर दफना दी गयी।

बाबर का चरित्र

बाबर अपने समय का बहुत महान् व्यक्ति था। वह योद्धा और सैनिक होने के साथ ही साहित्य-प्रेमी और विद्वान् पुरुष भी था। वह जैसा महत्वाकांक्षी था, वैसा ही उदार भी था। आपत्तियों को सहने का उसमें अपूर्व साहस और शक्ति थी। कठिन परिस्थितियों से घबड़ा कर भागने के बजाय वह डट कर सामना किया करता था। यही कारण है कि कठिनाइयों के होते हुए भी थोड़े से सैनिकों और साथियों के बल पर उसने एक विस्तृत राज्य कायम किया और अपनी महत्वाकांक्षा को सफल बनाया।

बाबर में सैनिक गुणों के साथ-साथ एक साहित्यिक और भावुक कवि के गुण भी विद्यमान थे। प्रकृति के सुन्दर दृश्यों और पशु-पक्षियों को देख कर वह मुग्ध हो जाता था।

आगरे में उसने कई बागीचे लगवाये। उसने तुजक बाबरी नाम से अपनी आत्मकथा भी लिखी, जिससे पता लगता है कि वह कितना सुन्दर लेखक और साहित्यिक था।

वह अत्यन्त कोमल-हृदयी पिता भी था। मरते समय उसने हुमायू को उपदेश दिया था कि अपने भाइयो के साथ कभी कठोरता का व्यवहार न करना। शत्रुओं के साथ भी वह उदारता से व्यवहार करता था। अपनी प्रजा का भी वह बहुत ध्यान रखता था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१–बाबर कौन था और उसे हिन्दुस्तान में आने का किसने निमंत्रण दिया था ?

२–इब्राहीम का पतन क्यों और कैसे हुआ ?

३–खनवा का युद्ध किस मे हुआ था ? उसका क्या परिणाम हुआ ?

४–घाघरा का युद्ध कब हुआ ? उसके परिणाम पर प्रकाश डालिये।

अध्याय १५

हुमायूं और शेरशाह

हुमायूं की स्थिति

बाबर के बाद उसका बड़ा लड़का हुमायू २९ दिसम्बर १५३० को सिंहासन पर बैठा। हुमायू के तीन भाई और थे–कामरान, हिन्दाल और असकरी। कामरान काबुल और कन्धार का शासक था और पंजाब पर भी उसने अधिकार प्राप्त कर लिया था। हिन्दाल के पास मेवात (अलवर) की जागीर थी और असकरी को सम्भल की जागीर मिली थी। बदख्शां में हुमायू का चचेरा भाई सुलेमान मिरजा शासक था। अमीरों को भी हुमायू ने बड़ी-बड़ी जागीरें और पुरस्कार दिये थे। साम्राज्य का यह विभाजन हुमायू ने अच्छा नहीं किया। इससे साम्राज्य की एकता भंग हो गयी।

हुमायू फूलों के सिंहासन पर नहीं बैठा था। उसका पिता साम्राज्य को बिना संगठित किये ही चल बसा था। अतः जिस साम्राज्य का हुमायू मालिक हुआ, वह अभी अव्यवस्थित और

असगठित था। उसे अपने इस साम्राज्य की व्यवस्था करनी थी। किन्तु उसके सामने कई बाधाएं और कठिनाइयां थी। एक तो उसके अपने भाई ही उसके प्रति अनुदार थे और शत्रु के समान व्यवहार करते थे। वे सभी भारत के सिंहासन पर निगाह लगाये हुए थे और स्वतत्र बनकर राज्य करना चाहते थे। उसके बहुत से दूसरे सबधी और अमीर भी उसके विरोधी थे। उनके अलावा राजपूत और अफगान पराजित होने पर भी अपनी स्वतन्त्रता को न भूले थे और फिर से अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की बाट जोह रहे थे। बिहार और जौनपुर अफगानों की शक्ति के केन्द्र थे। बिहार में शेर खां के नेतृत्व में अफगानों का एक दृढ सगठन पैदा हो गया था। गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने भी अपनी शक्ति बढा ली थी। मालवे को हडपने के बाद बहादुरशाह दिल्ली पर भी अधिकार करने के लिए उत्सुक था।

हुमायूं की कमजोरी

इस कठिन स्थिति का सामना करने के लिए एक चतुर राजनीतिज्ञ और कुशल तथा जागरूक सेनापति की आवश्यकता थी। लेकिन हुमायू में इन्ही बातो की कमी थी; यद्यपि व्यक्तिगत रूप से वह एक विद्वान, वीर, उदार और दयालु व्यक्ति था। उसका सबसे बडा अवगुण यह था कि वह दृढ निश्चय के साथ डट कर काम नही कर सकता था। वह आराम-पसन्द और लापरवाह-सा व्यक्ति था। उसे अफीम खाने की भी बुरी लत थी। थोड़ी-सी विजय पाने के बाद

वह खुशी मनाने में लग जाता था, जब कि उस बीच उसके शत्रु दुबारा आक्रमणों की तैयारी करते रहते थे। अतः अपनी लापरवाही और भाइयों की दुश्मनी के कारण हुमायूं को अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा और कुछ समय के लिए वह अपने पिता के जीते हुए साम्राज्य को भी खो बैठा। हुमायूं का अर्थ भाग्यवान होता है, लेकिन उसका जैसा अभागा बादशाह शायद ही कोई दूसरा हुआ हो।

बहादुरशाह के साथ युद्ध

गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने मालवे पर कब्जा कर अपनी शक्ति को बढा लिया था। राणा सागा के पतन से उसे चितौड पर आक्रमण करने का भी अवसर मिल गया था। दिल्ली पर भी उसकी दृष्टि थी। इसीलिए उसने हुमायू के कुछ विद्रोही सबधियो और अफगानो को अपने यहा शरण भी दी थी। उसके इन बर्तावो से असतुष्ट होकर हुमायू ने उस पर चढाई करने का निश्चय किया। सन् १५३४ मे हुमायू फौज लेकर बहादुरशाह को दड देने के लिए आगरे से गुजरात के लिए चल पडा। बहादुरशाह तब चितौड पर आक्रमण कर रहा था। इस अवसर पर चितौड की रानी कर्णावती ने भी हुमायू से मदद के लिए याचना की। हुमायू को चाहिए था कि चितौड जाकर राजपूतो का साथ देता और बहादुरशाह को वही पछाड डालता। लेकिन बजाय चितौड जाने के वह मालवा पहुचा और बहादुरशाह के लौटने की राह देखने लगा। चितौड़ से लौटने पर उसने बहादुरशाह को माडू मे परास्त किया। बहादुरशाह तब गुजरात की ओर भागा। हुमायू भी उसका पीछा करता हुआ गुजरात पहुचा और चम्पानेर, अहमदाबाद तथा खम्भात पर अधिकार कर लिया। बहादुरशाह भाग कर ड्यू चला गया (१५३५)।

हुमायू ने गुजरात के शासन के लिए अपने भाई असकरी और अमीरो को नियुक्त किया और स्वय माडू चला आया। माडू आकर वह आमोद-प्रमोद मे फस गया। गुजरात में

उसका भाई असकरी तथा अन्य मुगल जागीरदार भी लापरवाह होकर विलास में फंस गये। फलतः गुजरात में अशांति और अव्यवस्था फैल गई। इसका लाभ उठा कर बहादुरशाह ने पुनः गुजरात पर अधिकार कर लिया (१५३६)। इसी समय अस्करी ने भी विद्रोह किया जिसके कारण हुमायू को माण्डू से तुरन्त आगरे लौट जाना पड़ा। अस्करी ने क्षमा माग ली, किन्तु हुमायू के पीठ फेरते ही बहादुरशाह ने मालवे पर भी अधिकार कर लिया। पर बहादुरशाह भी इस अधिकार को अधिक दिन न भोग सका। सन् १५३७ में ड्यू मे पुर्तगालियों ने उसे धोखे से समुद्र में डुबो कर मार डाला। इस प्रकार हुमायू ने जिस आसानी से मालवा और गुजरात को जीता था, उसी प्रकार उन्हे गवां भी दिया।

हुमायू और शेरखां

जिस समय हुमायू मालवा और गुजरात में बहादुरशाह के साथ उलझा हुआ था, उसी बीचमें शेरखां ने अवसर पाकर अपनी शक्ति को काफी बढा लिया। सन् १५३७–३८ तक उसने बिहार के अलावा बंगाल के बहुत से हिस्से पर भी अधिकार कर लिया था। हुमायू अब शेरखा को दबाने के लिए पूर्व की ओर चढ़ा और उसने चुनार को घेर लिया। शेरखां तब गौड़ में था। छः महीने चुनार में बिता कर हुमायू शेर खां का पीछा करने के लिए बंगाल की ओर बढा। लेकिन शेर खां चुपके से गौड से रोहतास गढ वापस चला आया और उसने हुमायू को बगाल में आसानी से घुस जाने दिया। हुमायू गौड में पहुंच कर आमोद-

प्रमोद में पड गया और शेरखा पुनः चुनार और जौनपुर पर अधिकार करके कन्नौज तक छापा मारने लगा। इस स्थिति को देख कर हुमायू ने शेरखा से बिना लडे चुपचाप गौड़ से आगरे को लौट जाना ही उचित समझा। वह अकेला पड़ गया था और बरसात तथा बगाल-की जलवायु के कारण उसके सैनिक ज्वर से पीडित थे। कामरान और हिन्दाल जिन से मदद मिल सकती थी, वे आगरे में विद्रोही बन गये थे।

अभागा हुमायू जब चुपके-चुपके गौड से लौट रहा था तो शेरखा ने चौसा नामक स्थान पर उस पर यकायक आक्रमण कर दिया (सन् १५३९)। हुमायू बुरी तरह से परास्त हुआ और उसके अनेक सगी-साथी मारे गये। किसी तरह प्राण बचाकर वह आगरे लौट सका। भागने के लिए हुमायू खुद घोडे समेत गंगा में कूद पडा था और डूबने ही को था कि निजाम मुहम्मद नामक एक भिश्ती ने अपनी मश्क पर बैठा कर उसे पार उतार दिया। इस सेवा के बदले में हुमायू ने उस भिश्ती को दो दिन के लिए अपने सिंहासन पर बिठाया था।

बिलग्राम का युद्ध

इधर चौसा की विजय से शेरखा की ताकत बहुत बढ गयी और भारत का बादशाह होने का उसे अपना स्वप्न पूरा होता दीखने लगा। विजय के बाद वह तुरन्त गौड गया और वहा अपना अधिकार करके अफगान सरदारो की सलाह से बादशाह बन गया।

किन्तु इतने से ही वह संतुष्ट न हो गया। सन १५४०

में सेना लेकर वह आगरे की ओर बढ़ चला कामरान ने इस संकट में भी अपने भाई हुमायूं की मदद नहीं की। हुमायूं ने किसी तरह सेना एकत्र करके कन्नौज के पास बिलग्राम में शेरशाह का मुकाबला किया, किन्तु बुरी तरह से परास्त हुआ। इस हार से दिल्ली और आगरा उसके हाथ से निकल गये और वह जान लेकर पंजाब से होता हुआ सिन्ध की तरफ भाग गया।

शेरशाह के नेतृत्व मे दिल्ली और आगरे पर फिर अफगानों का झंडा फहराने लगा। भारत के बादशाह होने का शेरशाह का स्वप्न सफलीभूत हुआ। दिल्ली और आगरे के बाद शेरशाह ने पंजाब पर भी अधिकार कर लिया और फिर तुरन्त बंगाल का इन्तजाम करने के लिए वहां चला गया।

हुमायूं का ईरान जाना

कामरान और असकरी ने इस संकट मे भी हुमायूं का साथ न दिया और पंजाब को शेरशाह के हाथ में छोड़कर वे काबुल चले गये। हुमायूं निराश होकर सिंध चला आया। सन् १५४१ में जब वह सिंध मे हिन्दाल के साथ ठहरा हुआ था, हमीदा बानू से उसका विवाह हुआ। मारवाड़ के राजा मालदेव से उसे मदद मिलने की आशा थी, लेकिन यह आशा भी पूरी न हो सकी। अतः मालदेव का भरोसा छोड़कर अनेक कष्ट झेलता हुआ हुमायूं अंत में अमरकोट पहुंचा। यहां पर २३ नवम्बर सन् १५४२ को उसके प्रतापी बेटे अकबर का जन्म हुआ। सिंध में अपने पैर जमते न देखकर आखिर हुमायूं अपने नन्हे से बच्चे और

हमीदा बेगम तथा स्वामिभक्त सरदार बैराम खा आदि के साथ कधार के लिए रवाना हो गया। किन्तु कधार के शासक उसके भाई असकरी ने मदद करने के बजाय उसे कैद कर लेना चाहा। यह देख कर हुमायू घबडा कर ईरान की ओर भाग गया (१५४३)। जल्दी और घबडाहट मे बालक अकबर पीछे छूट गया। लेकिन अस्करी ने भतीजे को अपने पास रख लिया और ठीक तरह से उसका लालन-पालन किया। ईरान के बादशाह तहमास्प ने हुमायू का स्वागत किया। हुमायू को ईरान में ही छोड़ अब हमें शेरशाह की ओर लौट चलना चाहिए।

शेरशाह का पूर्व चरित्र

शेरशाह का बचपन का नाम फरीद था। उसका पिता हसन सूर सहसराम (बिहार) का एक जागीरदार था। अपनी सौतेली मा से खट-पट होने के कारण फरीद किशोर अवस्था में ही जौनपुर चला गया। वहा पर उसने अरबी और फारसी का अच्छा अध्ययन किया। उस की प्रतिभा और कुशाग्र-बुद्धि से उसके गुरुजन और जौनपुर का शासक जमाल खा बहुत प्रभावित थे। जमाल खां ने ही बाप-बेटे के बीच बाद में मेल करा दिया। फरीद ने बड़ी योग्यता और कुशलता के साथ शासन किया। किन्तु सौतेली मा के कारण फरीद ने फिर घर छोड़ दिया। सन् १५२२ मे फरीद ने बिहार के सूबेदार बहार खां लोहानी के यहा नौकरी कर ली। फरीद ने एक दफे अकेले एक शेर को मार गिराया जिस पर खुश होकर बहार खा ने उसे शेरखां की

उपाधि दी और उसे अपने लड़के जलाल खां का गुरु बनाया किन्तु कुछ दिन बाद उसे बिहार भी छोड़ देना पड़ा।

बाद में शेरखां फिर बिहार चला आया। वहां का शासक जलाल खां नाबालिग था, इसलिए शेरखां ही राज्य का कर्त्ता-धर्त्ता बन गया। उसने चुनार पर भी अधिकार कर लिया था। शेरखां के प्रभुत्व से घबड़ा कर नाबालिग सुल्तान बंगाल चला गया। इसके बाद शेरखा दक्षिण बिहार का बेताज का बादशाह बन गया। मौका पाकर बंगाल और बिहार के सुलतान ने मिलकर शेरखां पर आक्रमण किया। किन्तु वे दोनों सूरजगढ में बुरी तरह से परास्त हुए। शेर खां की यह बहुत बडी विजय थी। इस विजय ने उसकी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए द्वार खोल दिये। जैसा कि ऊपर कह आये हैं, इस समय हुमायू गुजरात में फंसा था। अत: अवसर पाकर १५३७--३८ के अन्दर शेरखां ने बंगाल पर भी कब्जा कर लिया। फलत: उसकी ताकत अब बहुत बढ गयी। इसीलिए हुमायू उसे दबा न सका और जैसा कि वर्णन किया जा चुका है, वह हार कर ईरान भाग गया और दिल्ली का तख्त शेरशाह के लिए छोड़ गया।

शेर शाह की अन्य विजय और मृत्यु

दिल्ली, आगरा व पंजाब को कब्जे में करने के बाद शेरशाह बंगाल का प्रबन्ध करने के लिए वहां गया। इसके बाद उसने अपना राज्य बढाने की इच्छा से अन्य प्रान्तों को जीतने
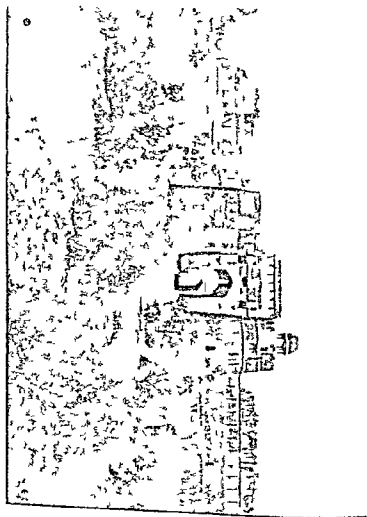
शेरशाह और हुमायूं का पुराना किला

का निश्चय किया। सन् १५४२ में उस ने मालवा को जीता और तब रायसीन के दुर्ग पर आक्रमण किया। इस किले के स्वामी पूर्णमल ने दुर्ग को खाली करना स्वीकार कर शेर शाह से सुलह कर ली। लेकिन जब राजपूत दुर्ग से जाने लगे तो शेर शाह ने सुलह तोड कर धोखे से उन पर आक्रमण कर दिया और सैकडो निरपराध राजपूतो को मार डाला।

सन् १५४४ मे शेरशाह ने जोधपुर के राजा मालदेव पर आक्रमण किया। मालदेव के राजपूत सेनापतियो ने डट कर शेरशाह का मुकाबला किया। इस युद्ध मे भी शेरशाह विजयी हुआ। लेकिन उसे बहुत नुकसान उठाना पड़ा। शेरशाह ने जीतने पर अपने भाग्य की सराहना की और कहा कि एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए मै दिल्ली का साम्राज्य ही खो बैठा था। जोधपुर के बाद शेरशाह ने चित्तौड़ पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इसके बाद उसने कालिजर के दुर्ग पर चढाई की। कालिजर का दुर्ग जीत लिया गया, लेकिन बारूद म आग लग जाने से शेरशाह का शरीर जल गया और २२ मई सन् १५४५ को उसकी मृत्यु हो गयी।

शेरशाह का चरित्र और शासन

शेरशाह सफल नेता, सगठनकर्त्ता, योद्धा, सेनापति, कुशल राजनीतिज्ञ तथा सुयोग्य शासक था। इसीलिए भारत के प्रसिद्ध और महान बादशाहो में उसकी गिनती की जाती है।

वह रात-दिन राज्य के कार्यों मे लगा रहता था। राज्य के हर-एक काम को वह स्वय देखता था। राज्य की प्रत्येक हलचल

की वह खबर रखता था। अपनी सेना का भी वह प्रति दिन निरीक्षण करता था। सैनिको व सरदारो का वह बहुत ख्याल रखता था,यद्यपि अपराध करने पर वह उन्हे दड देनेमे भी नही चूकता था। उसके सद्व्यवहार के कारण सभी सैनिक तथा सरदारगण उसे प्यार करते थे।

वह पराक्रमी और न्याय-प्रिय शासक था। धर्म के उन्माद में पड कर उसने तुर्क व अफगान सुल्तानो की तरह शासन में हिन्दू और मुसलमान का भेद नही किया । इसीलिए वह दोनो के प्रति उदार था और दोनो के हितो की रक्षा करता था। दिल्ली के बादशाहो में से इस दृष्टि से शासन करनेवाला वह पहला बादशाह हुआ है।

शासन की सुभीता के लिए उसने देश को सरकार और परगनो में बाट दिया था और उनके शासन के लिए कर्मचारी नियुक्त किये थे । वह किसी पदाधिकारी को एक जगह पर एक-दो साल से अधिक नही रहने देता था और उनकी बदली करता रहता था। अपराधियो, चोर, डाकुओ आदि को वह कठोर दड देता था। न्याय करने मे वह पक्षपात रहित था । उसके सामने छोटे-बडे, सगे-सम्बन्धी, अमीर व गरीब सब बराबर थे। राज्य भर मे उसने अदालतें खोल रखी थी।

राज्य के ऊँचे विभागो पर हिन्दू भी नियुक्त किये जाते थे । टोडरमल उसके अर्थ-विभाग मे ऊँचे पद पर नियुक्त था । उसका एक प्रसिद्ध सेनापति ब्रह्मजीत गौड था ।

मालगुजारी के विभाग में शेरशाह ने बहुत अच्छी व्यवस्था

की। उसने जमीन की पैमाईश कराई और पैदावार का $\frac{1}{4}$ राज-कर नियत किया। किसानों को कोई सता नहीं सकता था। उन्हें सताने वालों को कठोर दंड दिया जाता था।

व्यापार की उन्नति के लिए उसने बहुत-सी बड़ी-बड़ी सड़कें
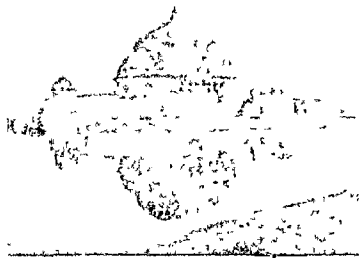
शेरशाह का मकबरा

बनवायीं। उनमें सब से बड़ी सड़क सोनार गाँव (पूर्वी बंगाल में) से सिन्धु नदी तक थी जो प्रायः १,५०० मील लम्बी थी। सड़क के किनारे यात्रियों की सुविधा के लिए सराय बनी हुई थीं। प्रत्येक सराय में हिन्दू व मुसलमानों के

लिए अलग-अलग प्रबन्ध था। छाया के लिए सड़को के किनार वृक्ष लगा दिये गये थे।

सेना का भी शेरशाह ने सु-प्रबन्ध किया। उसने एक बहुत बडी केन्द्रीय-सेना सगठित की। सेना के अनुशासन और आराम का वह बहुत ख्याल रखता था। सैनिको के साथ उदारता का बर्ताव किया जाता था। सैनिको को यह भी हिदायत थी कि लड़ाई पर जाते समय वे किसानो के खेतो को नुकसान न पहुचावे। जो सैनिक इस आज्ञा का उल्लघन करता था उसे बहुत कडा दड मिलता था। घोडो को दागने की प्रथा भी शेरशाह ने चालू की थी।

शेरशाह विद्या और कला का भी उपासक था। वह स्वय अच्छा विद्वान था। उसका अपने लिए बनवाया हुआ सहसराम का मकबरा कला की दृष्टि से बहुत शानदार माना जाता है।

दीन-दु खियो का शेरशाह बहुत खयाल रखता था। दीन-दु खियो को भोजन बाटने में वह हर साल १ लाख ८० हजार अशरफिया खर्च किया करता था।

नि सन्देह शेरशाह सूर मध्य-युग के भारतीय बादशाहो में सब से महान् व्यक्ति और शासक हो गया है। यदि वह कुछ समय और जीवित रहता तो सारे देश को एक सूत्र में बाध देता और सूर वश की नीव को इतना दृढ बना देता कि हुमायू को पुन. भारत में घुसने का अवसर शायद ही मिल पाता।

सूर वंश का पतन

शेरशाह की मृत्यु के बाद उसका लडका जलाल, सलीमशाह

के नाम से गद्दी पर वैठा। उसन १५४५ से १५५४ तक राज्य किया। उसके दुर्व्यवहार से बहुत से पुराने अफगान सरदार और अमीर विद्रोही हो गये। उस ने कठोरता से उनका दमन किया; किन्तु उसके जीवन के अन्त तक विद्रोह होते ही रहे।

सलीमशाह के बाद उसका बेटा फीरोज तख्त पर वैठा। फीरोज के मामा ने उसे मार डाला और स्वयं मुहम्मद आदिल-शाह के नाम से राज्य करने लगा। उसने हेमू नाम के बनिये को अपना प्रधान मंत्री बनाया। आदिल बहुत ही अयोग्य शासक साबित हुआ। वह विद्रोहों को दबा न पाया और बंगाल तथा मालवा के राज्य उसके हाथ से निकल गये। अवसर पाकर उसी के एक चचेरे भाई इब्राहीम खां सूर ने दिल्ली और आगरा पर भी अधिकार कर लिया। फलतः आदिल शाह को चुनार चला जाना पड़ा।

किन्तु इब्राहीम तख्त पर बैठा ही था कि पंजाब के सूबेदार शाहजादा अहमद खां ने दिल्ली और आगरा पर धावा कर दिया। इब्राहीम हार कर भाग गया और अहमद खां सिकन्दर शाह के नाम से तख्त पर बैठा (१५५४)। किन्तु उसके भाग्य में भी राज्य करना न बदा था।

हुमायूं का लौटना

हम कह आये हैं कि हुमायू भागता हुआ अन्त में ईरान जा पहुंचा था। वहां के शाह की मदद से उसने १५४५ में अस्करी और कामरान को हरा कर कन्धार व काबुल पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार लगभग चार साल बाद हुमायू को अपने

पुन अकबर का मुह देखने का अवसर मिला। कामरान और अस्करी अभी भी बगावती बने हुए थे। दोनों ने मिलकर हुमा. से काबुल छीनने की चेष्टा भी की। हिन्दाल हुमायू की तरफ से लड़ता हुआ युद्ध मे काम आया। कामरान और अस्करी परास्त कर दिये गये। कामरान की आखे फोड दी गईं और मक्के भेज दिया गया। अस्करी भी मक्के चला गया। इस प्रकार बड़ी दिक्कतों के बाद हुमायू को अन्त मे अपने दुष्ट भाइयों से छुटकारा मिल गया।

इसी समय भारत से उसे खबर मिली कि सूर सुल्तानों में झगड़ा चल रहा है और उनकी शक्ति टूट रही है। अतः नवम्बर १५५४ में हुमायू हिन्दुस्तान की ओर बढा। उसने आते ही पंजाब को दबा लिया। सिकन्दर सूर ने सरहिन्द में मुगलों का मुकाबला किया; किन्तु वह हार कर सिवालिक की ओर भाग गया। इस लड़ाई ने सूर वंश का अन्त कर दिया और दिल्ली तथा आगरे पर १५ वर्ष बाद फिर हुमायू का अधिकार स्थापित हो गया। इतने लम्बे समय के बाद जब दिल्ली तथा आगरे मे पुनः मुगल पताका फहराने लगी।

शाहजादा अकबर और बैराम खा आदि को सिकन्दर का पीछा करने के लिए पंजाब में छोड कर हुमायू स्वयं दिल्ली चला आया। किन्तु वह हमेशा का अभागा ही रहा। उस विजय का भी हुमायू अधिक दिन सुख न उठा सका और २४ जनवरी १५५६ को अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से लुढ़क कर परलोक सिधार गया।
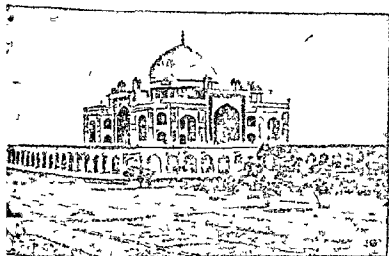
हुमायूं का मकबरा

हुमायू के मरने की खबर जब पंजाब पहुची तो बैरमखा आदि सरदारो ने मिल कर १४ फरवरी १५५६ को वहीं अकबर का राज्याभिषेक कर उसे जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर के नाम से बादशाह घोषित कर दिया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—'हुमायू फूलो के सिहासन पर न बैठ सका' ऐसा कहने के क्या कारण है ?

२–हुमायू के भाइयो ने उसके साथ कैसा बर्ताव किया ? उनके
को देखकर क्या उन्हे शत्रु नही कहा जा सकता ?
४–हुमायू फारस क्यो भाग गया ?
५-शेरशाह कौन था ? उसने किस प्रकार सूर वंश का राज्य कायम
किया ?
६–शेर शाह का शासन प्रबंध किस प्रकार का था ?
७–सूरवंश का पतन क्यो और कैसे हुआ ?

अध्याय १६

महान् सम्राट् अकबर

अकबर की स्थिति

हुमायूं ने दिल्ली और आगरे पर अधिकार तो कर लिया था, लेकिन पूरे साम्राज्य को अधिकृत करने का उसे अवसर न मिल पाया था। अतः उसकी मृत्यु और उसके लड़के अकबर के राज्यारोहण के समय राजनैतिक स्थिति बिल्कुल डावाडोल थी। काबुल में मिर्जा हकीम स्वतन्त्र-सा बन गया था। काश्मीर में एक स्वतन्त्र मुस्लिम वंश का राज्य था। शेरशाह की मृत्यु के बाद सिंध, मुल्तान और राजपूताना भी स्वतन्त्र हो गये थे। बंगाल, उड़ीसा, मालवा, गुजरात, गोंडवाना आदि प्रान्त भी स्वतन्त्र थे। दक्षिण में विजयनगर का हिन्दू राज्य तथा खानदेश, बरार, बीदर, अहमदनगर और गोलकुण्डा आदि की स्वतन्त्र मुस्लिम रियासतें थीं। अतः जब १३ वर्ष का बालक अकबर सिंहासन पर आया तो उसे वास्तव में बादशाह कहलाये जाने के लिए नये सिरे से भारत के विविध प्रान्तों

को जीतना आवश्यक था। विना उन्हे जीते वह भारत ेन बादशाह हो भी कैसे सकता था?

अकबर और हेमू

जिस समय हुमायू मरा, बालक अकबर अपने गुरु और सेनापति बैराम खा के साथ पजाब में था और वही पर उसको बादशाह घोषित किया गया था। बेचारा अकबर दिल्ली पहुंचने भी न पाया था कि आदिलशाह के सेनापति हेमू अथवा हेमचन्द्र ने यकायक फौज लेकर आगरा व दिल्ली पर अधिकार कर लिया। हेमू की महत्वाकांक्षा विदेशी मुगलों को भगा कर हिन्दुस्तान में पुनः हिन्दू-राज्य कायम करने की थी। दिल्ली और आगरा लेने के बाद हेमू ने विक्रमादित्य की उपाधि ली और अपने को सम्राट भी घोषित कर दिया था। इसलिए दिल्ली और आगरा पर अधिकार पाने के लिए सब से पहले अकबर को हेमू से लडना जरूरी हो गया। हेमू की शक्ति से भयभीत होकर बहुत से मुगल सरदारो ने उस समय अकबर को काबुल लौट चलने की सलाह दी, किन्तु बैरामखां ने ऐसा करना ठीक न समझा। अकबर और बैराम खा फौज लेकर दिल्ली की ओर बढे। हेमू ने पूरी ताकत के साथ पानीपत के मैदान मे डट कर मुगलों का सामना किया; किन्तु दुर्भाग्यवश एक आख में तीर लग जाने से हेमू हौदे में गिर पडा। उसके गिरते ही उसकी सारी फौज भाग खड़ी हुई। हेमू पकड़ा गया और घायल अवस्था में अकबर के सामने लाया गया। बैराम खा ने अकबर से कहा कि हेमू का सिर काट

वालो। लेकिन बालक होते हुए भी अकबर मे नीतिज्ञता और उदारता की कमी न थी। उसने घायल शत्रु पर हाथ उठाने से इन्कार कर दिया। तब बैराम खां ने स्वयं तलवार लेकर हेमू का सिर उड़ा दिया।

इस प्रकार इधर हेमू खतम हुआ और दूसरी ओर पूरब में आदिलशाह सूर भी बंगाल के सुलतान से लड़ता हुआ मारा गया। इसी समय मुगल सेना ने मानकोट (जम्बू के पास) में सिकन्दर सूर को भी परास्त कर दिया। अब अकबर के सामने जो प्रारम्भिक कठिनाइयाँ थी, दूर हो गयी और निष्कंटक होकर उसने दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार कर लिया।

बैराम खां का पतन

बैराम खां हुमायूं का सच्चा, विश्वासपात्र और स्वामिभक्त अमीर था। हुमायूं की उसने बहुत सहायता की थी। अपनी बुद्धिमानी और वीरता के बल पर ही उसने आरम्भ में मुगल राज्य को संकट से बचाया और अकबर को राज्य दिलाने के लिए अथक परिश्रम किया। उसकी स्वामिभक्ति और योग्यता से प्रसन्न होकर ही हुमायूं ने उसे खानखाना की उपाधि दी थी। अकबर श्रद्धावश उसे खान बाबा कहा करता था। किन्तु दिल्ली व आगरा पर अधिकार हो जाने के बाद बैराम खां ने अपना दबदबा बहुत बड़ा लिया। राज्य की बागडोर उसने अपने ही हाथों में रखी जिस कारण बहुत से मगल अमीर असंतुष्ट हो उठे। अकबर भी अब १८

वर्ष का हो चुका था और स्वय राज्य करना चाहता था। महल की बेगमे भी बैराम खा से ईर्षा करने लगी थी। अत १५६०मे अकबर ने सारी शासन सत्ता अपने अधिकार में कर ली और बैराम को नौकरी से अलग कर दिया। बैराम ने नाराज होकर पजाबमे जाकर विद्रोह खडाकर दिया। लेकिन वह परास्त हुआ और अकबर ने उदारतापूर्वक उसे मक्का चले जाने की आज्ञा दे दी। लेकिन जब बैराम गुजरात मे पहुचा तो एक अफगान ने उसे मार डाला। उदार-हृदयी अकबर ने बैराम के बच्चे अब्दुर्रहीम और उसकी स्त्रियो को अपने पास बुला लिया। लडके की शिक्षा-दीक्षा का बादशाह ने पूरा प्रबन्ध किया। आगे चलकर यह होनहार बालक अब्दुर्रहीम खान खाना के नाम से साम्राज्य का एक प्रसिद्ध अमीर हुआ।

विजय और राज्य का विस्तार

अकबर ने जिस समय बैराम खा के हाथो से राज्य की बागडोर ली, तब वह युवक था। किन्तु वह साधारण युवक न था। उसकी बुद्धि और प्रतिभा असाधारण थी। उसके विचार ऊचे, भाव प्रबल और आकाक्षा विशाल थी। वह भारत का सही अर्थ में सम्राट होना चाहता था। वह विदेशी होने पर भी अपनेको विदेशी नही समझता था। वह जानता था कि जब मुझे भारत का शासक बनकर रहना है तो मैं एक विदेशी विजेता के रूप मे शासन नही कर सकता। उसे इस बात का ज्ञान था कि मुझे भारत की जनता के साथ सुख-दुख मे शामिल रहना है। वह यह भी जानता था कि हिन्दू व राजपूत भारत के

असली निवासी है,इसलिए धर्म के नाम पर उन से दुर्व्यवहार करना और उन्हें ठुकराना बड़ी भारी गलती है। उसे यह भी प्रतीत हो चुका था कि हिन्दुओं और राजपूतों के सहयोग के बिना भारत में कोई विदेशी वश आसानी से राज नहीं कर सकता। अतः प्रारम्भ से ही उसने हिन्दू और खासकर राजपूतों को अपनी ओर मिलाने की भरपूर चेष्टा की। दूसरी ओर भारत को एक सूत्र और एक शासन में लाने के लिए उसने सम्पूर्ण प्रदेशों को जीतने की योजना बनायी और जीवन-भर साम्राज्य की वृद्धि और प्रजा की सुख-चिन्ता में लगा रहा।

मालवा

अकबर का ध्यान पहले मालवा की ओर गया। वहां उस समय बाज बहादुर सुल्तान बना हुआ था। अकबर ने अधम खां (अदहम खां) और अन्य मुगल सेनापतियों को मालवे पर आक्रमण करने भेजा।

बाज बहादुर हार गया। उसने दुबारा सिर उठाया; लेकिन मुगल सेनाने उसे फिर हराया और मालवे से भगा दिया।

इसी समय एक भीषण दुर्घटना भी हुई। अधम खां अकबर की धाय (दूध-माता) का लड़का था। अकबर इस धाय के प्रभाव में बहुत रहता था। अपनी माता के प्रभाव को देखकर अधम खां का मस्तिष्क फिर गया। उसने अकबर का लिहाज करना सब छोड़ दिया। एक दिन उसने अकबर के एक मंत्री को दीवान-खाने में ही मार डाला। अकबर के क्रोध का ठिकाना न रहा और उसने आदमखां को किले के बुर्ज

से नीचे फिकवा कर मरवा डाला। अधमग्खा मर गया और उस के दुःख से कुछ समय बाद उस की मा भी परलोक सिधार गयी।

रानी दुर्गावती पर आक्रमण

इलाहाबाद से अकबर ने अपने सेनापति आसफखां को गोंडवाना (मध्यभारत म) पर आक्रमण करने को भेजा। उस समय वहा अपने नाबालिग पुत्र वीर नारायण की तरफ से विधवा रानी दुर्गावती राज्य करती थी। दुर्गावती ने सिहनी की तरह मुगलो का मुकाबला किया। लेकिन जब उसने देखा कि हार निश्चित है तो छुरा भोक कर आत्महत्या कर डाली। उसका लड़का वीर नारायण भी चौरागढ के दुर्ग की रक्षा करता हुआ मारा गया और गोडवाना पर अकबर का अधिकार हो गया।

मेवाड़ पर आक्रमण

अकबर ने शुरू से ही राजपूतो से मेल स्थापित करने-की चेष्टाएं की। सन् १५६२ में अकबर ने अजमेर (जयपुर) के राजा भारामल की लड़की से विवाह किया और उसके बेटे भगवानदास (भगवन्तदास) तथा पौत्र मानसिंह को ऊंचे पद दिये। इस विवाह सम्बन्ध ने मुगलो और आमेर के राजपूतो में स्नेह का सम्बन्ध स्थापित कर दिया। फल यह हुआ कि इस समय से मुगल बादशाहो को अनेक राजपूत राजाओं का बहुत समय तक सच्चा सहयोग प्राप्त होता रहा।

आमेर (जयपुर) की देखादेखी मारवाड़ के राठौर और

जैसलमेर के भट्टी राजाओं ने भी अपनी लडकिया अकबर को व्याह दी। लेकिन मेवाड के वशाभिमानी और स्वतन्त्ता-प्रेमी राणा उदयसिंह ने अधीनता नही स्वीकार की। अत. अकबर ने सन् १५६७ मे चित्तौड पर चढाई कर दी। राणा उदयसिह ने चित्तौड की रक्षा का भार जयमल और पत्ता को सौपा और स्वय पहाडो में चला गया।

जयमल और पत्ता ने चार महीने तक अकबर की सेना का डटकर मुकाबला किया। लेकिन जब जयमल अकबर की गोली लगने से घायल होकर मर गया तो राजपूत हतोत्साह हो उठे। जब राजपूतो ने बचने का उपाय न देखा तो उनकी स्त्रियो ने जौहर किया और वे स्वय वीर पत्ता के नेतृत्व मे मुगलो से युद्ध करते हुए स्वर्ग सिधार गये। सन् १५६८ में चित्तौड पर अकबर का अधिकार हो गया।

महाराणा उदयसिह के बाद सन् १५७२ में उसका प्रतापी पुत्र महाराणा प्रताप सिहासन पर बैठा। प्रताप ने मुगलो को कभी सर न झुकाने और मेवाड का झडा ऊचा रखने की दृढ प्रतिज्ञा की। अपनी प्रतिज्ञानुसार वे अनेक कष्टो को झेलते हुए जीवन के अन्त तक अकबर से अकेले लडते ही रहे। सन् १५७६ में अकबर के सेनापति मानसिंह ने राणा को हल्दीघाटी में परास्त किया। किन्तु राणा ने पहाडो में छिपकर लडाई जारी ही रखी। थकना और झुकना वीर प्रताप जानते ही न थे। यही कारण था कि उन्होंने आखिर तक लडते हुए अपने मरने से पूर्व चित्तौड के अलावा मेवाड के

बहुत से भागों पर पुनः अधिकार स्थापित कर लिये इस महान् देश-प्रेमी और स्वतन्त्रता के पुजारी की मृत्यु १५८७ में हुई। निःसन्देह जब तक संसार अपने वीरों सम्मान और पूजा करता रहेगा तब तक भीष्म पितामह सदृश वीर प्रताप का नाम भी अमर रहेगा।

गुजरात, बिहार और बंगाल की विजय

बहादुरशाह के बाद गुजरात में अराजकता फैल चुकी थी। यहां के सरदार आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। वहां के नाम मात्र के बादशाह मुजफ्फरशाह को कोई कुछ समझता ही नहीं था। बहुत से मुगल शाहजादों ने भी गुजरात को विद्रोह का अड्डा बना लिया था। अतः सन् १५७२-७३ में अकबर ने दो बार गुजरात पर चढ़ाई की और उस प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने सीकरी के पास जो नगर बसाया था, उसका नाम फतहपुर सीकरी रखा।

गुजरात के बाद अकबर ने बंगाल और बिहार के अफगान सुलतान दाऊद पर चढाई करके उसे पटने से खदेड़ दिया। उसके सेनापतियों ने दाऊद का पीछा करना जारी रखा। फलतः उसे बंगाल से उड़ीसा की तरफ भागना पड़ा। दाऊद ने दुबारा बंगाल पर अधिकार करने का प्रयत्न किया; लेकिन वह फिर हारा और मार डाला गया (ई० १५७६)। बंगाल का कुछ भाग और बिहार अब पूरी तरह से मुगल राज्य के अधीन हो गये। इसके बाद राजा

मानसिंह ने उडीसा के विद्रोही अफगानो को दबा कर उस प्रान्त को भी मुगल साम्राज्य मे मिला लिया।

उत्तर-पश्चिम

अकबर हिन्दुओ के प्रति बहुत उदार था। उसकी यह उदार नीति बहुत से अमीरो और मुल्लाओ को नापसन्द थी। इस कारण से तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए मुगल वश के शाहजादे व अमीर आदि बहुधा अकबर के विरुद्ध विद्रोह करते रहते थे। अकबर भी दृढता से उनका दमन करने मे चूकता नही था। अत विद्रोहियो की कुछ चलती ही न थी।

सन् १५८० मे बगाल और बिहार के मुगल सरदारो तथा दरबार के कुछ अमीरो के बहकाव मे आकर काबुल के शासक मिर्जा हकीम ने विद्रोह किया और सिंधु नदी के किनारे तक बढ आया। अकबर ने तुरन्त पजाब की ओर कूच किया। हकीम भागकर काबुल लौट गया। अकबर भी पीछा करता हुआ काबुल पहुचा। मिरजा हकीम डरकर भाग गया, लेकिन अकबर ने उसे क्षमा कर फिर काबुल का शासक बना दिया। सन् १५८५ मे हकीम की मृत्यु होने पर अफगानिस्तान को मुगल राज्य मे मिला लिया गया। इसी समय, बिहार और बगाल मे टोडरमल आदि मुगल सेनापतियो ने विद्रोहियो का जोरो से दमन किया।

लेकिन उत्तर-पश्चिम के अफगान विद्रोह करते ही रहते थे। अत. उत्तर-पश्चिम के सीमाप्रान्त की देख-भाल के लिए अकबर स्वय १३ वर्षों तक (१५८५–९८) लाहौर को राज-

धानी बनाकर वही पडा रहा। सीमाप्रान्त के अफगानो के विद्रो
दवाने मे अकबर का परम प्रिय मत्री व सेनापति राजा बी
बल भी काम आया (१५८६) ।

इसी समय अकबर ने काश्मीर के सुलतान को हरा क
उस प्रान्त पर अधिकार कर लिया । इसके बाद उडी
सिन्ध, बिलोचिस्तान और कन्धार पर भी अकबर का अधि
कार हो गया । अकबर अब लगभग सम्पूर्ण उत्तरी-भारत क
एकछत्र सम्राट वन गया ।

दक्षिण की ओर

उत्तरी-भारत को अधिकार में करने के बाद अकबर का
ध्यान दक्षिण की ओर गया। दक्षिण मे विजयनगर के हिन्दू
राज्य को बीजापुर, गोलकुण्डा और अहमदनगर आदि
मुस्लिम रियासतो ने मिलकर पहले ही समाप्त कर दिया था।
अत: इस समय दक्षिण में मुस्लिम रियासतो का ही जोर था।
ये रियासते आपस मे लडती-झगडती रहती थी। इसलिए
उन्हें दबाने का अच्छा मौका था। सन् १५९१ में सबसे पहले
अकबर ने दक्खिन के सुलतानो के पास दूत भेजे और उनसे
प्रभुता स्वीकार करने के लिए कहा, किन्तु दक्षिण के सुलतानो
ने प्रभुता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इस पर १५९५
में अकबर ने अहमदनगर पर चढाई करने को सेनाए भेजी।
सुलताना चान्द बीबी ने वीरता से मुगलों का सामना किया और
अहमदनगर की रक्षा की। किन्तु शीघ्र ही आतरिक झगडो
के कारण चान्द बीबी मार डाली गइ और अहमदनगर में

बिछा गयी। यह दशा देखकर अकबर की सेना ने पुनः अहमदनगर पर घेरा डाला और सन् १६०० मे उस पर मुगलो का अधिकार हो गया।

इसी समय अकबर ने स्वय खान देश पर चढाई की। उसने के सरदारो आदि को रिश्वत देकर १६०१ मे असीरगढ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अहमदनगर, बरार और खानदेश नाम के तीन सूबे बनाकर मुगल राज्य में मिला लिये गये। इस प्रकार अकबर का साम्राज्य हिमालय से लेकर दक्षिण में गोदावरी नदी तक और पश्चिम में काबुल कधार से लेकर पूरब में ब्रह्मपुत्र नदी तक विस्तृत हो गया।

अकबर की मृत्यु

लेकिन अकबर के अन्तिम दिन सुख-चैन से न बीते। सन् १६०० में जब अकबर दक्षिण गया हुआ था, उसके लड़के सलीम ने इलाहाबाद में अपने को स्वतत्र बादशाह घोषित कर दिया। इसके दो वर्ष बाद उसने बादशाह के परम प्रिय मत्री की हत्या करा डाली। अकबर को इससे बहुत दुःख पहुचा। लेकिन अन्त में सलीम ने क्षमा माग ली (१६०४) और अकबर का क्रोध भी शान्त हो गया। किन्तु इससे अकबर का दुःख कम न हो सका। उसके दो पुत्र मुराद और दानियल भी मर चुके थे। उसके प्रिय मंत्री और साथी बीरबल, अबुल फजल, टोडरमल आदि भी परलोक सिधार चुके थे। अब अकबर को अपनी दुनिया सूनी मालूम पड़ती थी। इन दुःखो के कारण वह अस्वस्थ रहने लगा और सन् १६०५ में सग्रहणी (पेट

का रोग) हो जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। वे आगरे के पास सिकन्दरे के मकबरे में दफना दिया गया।

अकबर का शासन

अकबर जितना बड़ा विजेता था, उससे कहीं अधिक निपुण राजनीतिज्ञ था। उसने भारत के राज्यों तथा प्रान्तों पर महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी और अपने पूर्वज तैमूर की तरह धन और सम्पति के लोभ से ही आक्रमण किया था। उसकी विजय का ध्येय सारे भारत को राजनैतिक एकता के सूत्र में बांधना था। अखण्ड भारत का राष्ट्रीय सम्राट बनना उसकी एक मात्र इच्छा थी। उस के पहले शेरशाह ने भी उदार और राष्ट्रीय शासक की तरह शासन करने की नीति अपनायी थी। इसी तरह राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर अकबर ने भी समानता से शासन किया और हिन्दू व मुस्लिम रूप से प्रजा में कोई भेद नहीं किया। उसने तुर्क व अफगान सुल्तानों की तरह धर्म को शासन का आधार न बनाया। मुस्लिम और हिन्दू का भेद हटा दिया गया और मुल्ला-मौलवियों को राज्य प्रबंध में दखल देने से रोक दिया गया।

शासन प्रबन्ध

शासन की सुविधा के लिए सारे साम्राज्य को अकबर ने शेरशाह की तरह सूबों में बांट दिया था। सूबे का अधिकारी सूबेदार या सिपहसालार कहलाता था।

सिपहसालार के नीचे उसको शासन में मदद देने के लिए

एक दीवान (अर्थ-मन्त्री), एक फौजदार, एक बख्शी (वेतन बाटने वाला), और एक सदर (धर्म का अधिकारी), एक मीर आदिल या काजी (न्यायाधीश) रखा जाता था। सूबेदारो की बदली होती रहती थी, ताकि वे एक ही स्थान पर रहने के कारण शक्तिशाली न बन जाय। केन्द्र को प्रान्तो की खबर देने के लिए वाकया-नवीस नियत थे।

प्रत्येक नगर के शासन के लिए एक काजी और सुरक्षा के लिए एक कोतवाल रहता था।

केन्द्रीय शासन का सर्वेसर्वा बादशाह था। बादशाह को शासन में मदद देने के लिए एक वकील (प्रधान मत्री), वजीर (अर्थ-मत्री या दीवान), मीर बख्शी (सेना विभाग का अध्यक्ष) और प्रधान सदर (धर्माधिकारी) रहते थे। इन के अलावा और भी कई अधिकारी हुआ करते थे।

सेना

सेना का सबसे बडा सेनापति सम्राट स्वय था। सैन्य विभाग का उच्चाधिकारी मीर-बख्शी कहलाता था। सैन्य सगठन के लिए बादशाह ने मनसब (फौजी) प्रथा कायम की। मनसबदारों के ३३ दर्जे थे। सबसे बडा मनसबदार दस हजारी कहलाता था। मनसबदारो को अपने दर्जे के अनुसार घुडसवार रखने पडते थे। मनसबदार सैनिक-विभाग के अलावा दीवानी विभाग के भी अधिकारी होते थे। अत उन्हें दोनो प्रकार के कार्य करने पडते थे।

दिये जाते थे। उन्हे अपने तथा सेना के व्यय के लिए वतन दिया जाता था और कभी वेतन के बदले अस्थायी जागीर भी दी जाती थी। मनसवदारो की सेना का हिसाव रखने के लिए प्रत्येक सैनिक का नाम और परिचय रजिस्टर में दर्ज किया जाता था। इसी तरह घोडो का हिसाव रखने के लिए उन्हे सरकारी मुहर से दाग दिया जाता था।

प्रत्येक मनसबदार को निरीक्षण के लिए नियत समय पर अपने घोडे लाने पडते थे।

मुख्य सेना घुडसवारो की थी। सेना के अन्य अगोमें पैदल, वदुकची और हाथी भी शामिल थे। बन्दुकचियो की सेना को तोपखाना कहा जाता था।

स्थायी सेना अधिक न थी। अत युद्ध के समय आधीन राजाओ और मनसवदारो की सेना से काम लिया जाता था।

अकवर के सुधार

शासन व्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिए अकबर ने कई सुधार किये। उसने सवसे पहले शासन से मुसलमानियत को विदा किया। हिन्दू और मुस्लिम प्रजा को उसने समान रूप से समझा। इसलिए धर्म-भेद के कारण हिन्दुओ से अब तक जो तीर्थ-यात्रा कर तथा जजिया लिया जाता था, उन्हें अकबर ने उठा दिया।

किसानो के हित के लिए अकबर ने मालगुजारी के इन्तजाम मे भी कई सुधार किये। बादशाह की आज्ञा से राजा टोडरमल ने जमीन की पैमाइश की। उपज तथा उर्वरा-शक्ति

धिकारी थे। पारसी, पठान, अफगान आदि सभी को उसन सना गें ऊचे पद दिये ।

हिन्दुओ स घनिष्ठता बढाने क लिए उसने राजपूत राजाओं क यहा विवाह सबध कायम किया । अकबर की उत्कट अभिलाषा थी कि हिन्दू और मुस्लिम का भेद मिट जाय, दोनो आपस में भाई-चारे से रहा करे और धर्म के नाम पर झगडना छोड दे। सचमुच ही अकबर ने अपनी इस उदार नीति के सहारे हिन्दू व राजपूतो के हृदयो पर विजय प्राप्त कर ली। शस्त्रो की विजय से प्रेम की यह विजय मुगल राज्य के लिए अधिक मूल्यवान साबित हुई। हिन्द और राजपत

इन व्यवहारों से हिन्दू जनता मुग्ध हो गयी और उसे अशोक की तरह ही एक महान राजा मानने लगी।

धार्मिक एकता और दीन इलाही

अकबर के धार्मिक विचार बहुत उदार थे। सूफी और भक्त कवियों के भक्ति व प्रेम के अन्दोलनों का भी उस पर असर पड़ा था। वह धर्मों और मतोंके झगड़ों को पसन्द न करता था। मुसलमान मुल्ला व मौलवियों की धार्मिक कट्टरता उसे बिल्कुल ही नापसन्द थी।

वह धर्म का सही अर्थ समझना और सत्य की खोज करना चाहता था। इसलिए वह सब प्रकार के धर्म-ग्रन्थों को पढ़वाकर सुना करता था और दूसरे धर्मों के लोगों की बातें चाव से सुनता था। इस प्रकार सुनने और मनन करने से अकबर को यह प्रतीत हुआ कि प्रत्येक धर्म में कुछ न कुछ सत्य निहित है और लोग अपनी संकीर्णता के कारण धर्म के नाम पर व्यर्थ झगड़ते रहते हैं। अतः अकबर इन धार्मिक झगड़ों का अन्त करने की सोचने लगा।

धिकारी थे। पारसी, पठान, अफगान आदि सभी को उसने सेना में ऊंचे पद दिये।

हिन्दुओ से घनिष्ठता बढाने के लिए उसने राजपूत राजाओ के यहा विवाह सबध कायम किया। अकबर की उत्कट अभिलाषा थी कि हिन्दू और मुस्लिम का भेद मिट जाय, दोनो आपस मे भाई-चारे से रहा करे और धर्म के नाम पर झगडना छोड दे। सचमुच ही अकबर ने अपनी इस उदार नीति के सहारे हिन्दू व राजपूतो के हृदयो पर विजय प्राप्त कर ली। शस्त्रो की विजय से प्रेम की यह विजय मुगल राज्य के लिए अधिक मूल्यवान साबित हुई। हिन्दू और राजपूत अकबर की सहानुभूति पाकर मुगलो को अपना सा ही समझने लगे और औरगजेब ने जब तक अपने धार्मिक उन्माद से उन्हें दुश्मन न बना दिया, वे बराबर मुगल बादशाहो की सेवा करते रहे।

हिन्दुओ के प्रति समान भाव प्रगट करने के लिए अकबर ने बहुत से हिन्दू आचरण और व्यवहारो को अपना लिया। उसने मास खाना बहुत कम कर दिया और प्याज व लहसुन त्याग दिया। उस ने विशेष धार्मिक अवसरो पर जीव-हत्या करने पर भी रोक लगा दी। कृषि व युद्धोपयोगी पशुओ-गाय, भैस, घोडे-आदि का वध बद करा दिया। धार्मिक अवसरो पर वह हिन्दुओ की तरह माथे पर टीका भी लगाने लगा। वह सूर्य और अग्नि की भी उपासना करने लगा। उनके

इन व्यवहारों से हिन्दू जनता मुग्ध हो गयी और उसे अशोक की तरह ही एक महान राजा मानने लगी।

धार्मिक एकता और दीन इलाही

अकबर के धार्मिक विचार बहुत उदार थे। सूफी और भक्त कवियो के भक्ति व प्रेम के आन्दोलनो का भी उस पर असर पड़ा था। वह धर्मो और मतोके झगडो को पसन्द न करता था। मुसलमान मुल्ला व मौलवियो की धार्मिक कट्टरता उसे बिलकुल ही नापसन्द थी।

वह धर्म का सही अर्थ समझना और सत्य की खोज करना चाहता था। इसलिए वह सब प्रकार के धर्म-ग्रन्थो को पढ़वाकर सुना करता था और दूसरे धर्मो के लोगो की बातें चाव से सुनता था। इस प्रकार सुनने और मनन करने से अकबर को यह प्रतीत हुआ कि प्रत्येक धर्म मे कुछ न कुछ सत्य निहित है और लोग अपनी सकीर्णता के कारण धर्म के नाम पर व्यर्थ झगड़ते रहते है। अत अकबर इन धार्मिक झगडो का अन्त करने की सोचने लगा।

सन् १५७५ मे अकबर ने धार्मिक विपयो पर विचार करने के लिए फतहपुर सीकरी मे एक इबादतखाना बनवाया। यहा पर मुसलमान, हिन्दू, जैन, पारसी, ईसाई आदि धर्मो के पडित एकत्रित होते थे और आपस मे वाद-विवाद करते थे। हिन्दू, पारसी और ईसाई धर्मो से अकबर बहुत प्रभावित हुआ और मुसलमान मौलवियो की कट्टरता से उसे चिढ हो चली। वह धार्मिक एकता चाहता था, लेकिन

मुल्ला और मौलवी बाधा डालते थे। अत एक फतवे के द्वारा अकबर ने धर्म के अधिकार भी अपने हाथ में ले लिये। इस अधिकार को पाने पर अकबर ने सब धर्मो की एकता के लिए सन् १५८१ मे एक नया धर्म या पन्थ चलाया, जो दीन-इलाही के नाम से प्रसिद्ध है।

इस नये धर्म मे सब धर्मो की अच्छी बाते शामिल थी। यह धर्म सब धर्मो मे मेल स्थापित करने के उद्देश्य से ही चलाया गया था। अकबर स्वय इस धर्म का गुरु था और उस धर्म को ग्रहण करने वालो को वह स्वय दीक्षा दिया करता था। किन्तु सब प्रकार से सुन्दर भावनाओ से पूर्ण होने पर भी यह धर्म अधिक दिन न चल सका।

साहित्य और कला

अकबर ने साहित्य और कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। यह स्वय पढा लिखा तो न था, लेकिन विद्या के प्रति उसमें बहुत अनुराग था। वह अनेक शास्त्रो तथा पुस्तको को लोगो से पढवा कर सुना करता था। उसने अनेक विदेशी भाषा और सस्कृत के ग्रथो—रामायण, महाभारत अथर्ववेद आदि—का फारसी में अनुवाद कराया। उसके समय में अनेक विद्वान पुरुष हुए। अबुलफजल, निजामउद्दीन अहमद और बदायूनी उसके समय के प्रसिद्ध इतिहास लेखक थे। उसके विद्वान सेनापति अब्दुर्रहीम खान-खाना ने हिन्दी और फारसी में ग्रन्थ लिखे। अबुलफजल के 'अकबरनामा' और 'आइने-अकबरी' ग्रथ भी बहुत प्रसिद्ध है।

सूर सागर के रचयिता सूरदास और रामचरित मानस के रचयिता महात्मा तुलसीदास भी अकबर के समकालीन थे, लेकिन ये महात्मा बादशाह की सरक्षता मे नही रहते थे।

अकबर ने सगीतकला और चित्रकला को भी प्रोत्साहन दिया था। उसके दरबार का प्रसिद्ध गवैया तानसेन था। इमारतें बनवाने का भी अकबर को बहुत शौक था। आगरे का किला और फतहपुर सीकरी की प्रसिद्ध इमारतें उसी की बनवाई हुई हैं। फतहपुर सीकरी का बुलन्द दरवाजा उसके समय की वास्तुकला का उत्तम नमूना है। उसकी इमारतो पर हिन्दू-वास्तुकला का प्रभाव स्पष्ट दीखता है।

महान् सम्राट अकबर

अकबर का स्थान ससार के महान् बादशाहो में है। गुणो का वह भण्डार था। कडा परिश्रम करने पर भी वह जल्दी थकता नही था।

वह हसमुख और विनोद प्रिय था। लेकिन क्रोध आने पर विकराल हो जाता था। वह सबसे नम्रता का व्यवहार करता था।

वह कुशल सेनापति और शासक था। शत्रुओ के प्रति वह बहुधा उदारता से काम लेता था। शासन में उसने इसी प्रकार उदार नीति से काम लिया। धर्म के पक्षपात में पडकर उसने हिन्दुओ को कभी अलग नही समझा। वह अपने को किसी धर्म या वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नही मानता था। वह अपने को सच्चे अर्थ में भारत का राजा या शासक

समझता था; इसीलिए एक राष्ट्रीय राजा की तरह आचरण करता हुआ समस्त प्रजा को वह अपनी प्रजा मानता था। उस की महानता का इससे बड़ा प्रमाण दूसरा नहीं हो सकता।
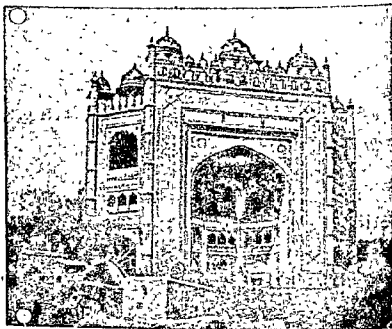
बुलन्द दरवाजा (फतहपुर सीकरी)

अतः आज भी भारत के लोग अकबर को श्रद्धा और प्रेम के साथ याद करते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१–हेमू कौन था ? अकबर और हेमू में क्यों लड़ाई हुई ?

२–बैराम खाँ के बारे में आप क्या जानते हैं ?

३–महाराणा प्रताप का नाम क्यों प्रसिद्ध है ?

४–अकबर का शासन किस प्रकार का था ? उसे महान क्यों कहा जाता है ?

५–अकबर ने कौन सा नया धर्म चलाया था और किस अभिप्राय से ?

६–अकबर ने कौन-कौन से सुधार के कार्य किये थे ?

अध्याय १७

जहाँगीर और शाहजहाँ

(मुगल साम्राज्य का वैभव)

जहांगीर

अकबर के बाद उसका लडका सलीम जहांगीर नाम से सन् १६०५ में गद्दी पर बैठा। उसकी उम्र तब ३ वर्ष की हो चुकी थी। यद्यपि वह अपने पिता की तरह यो॰ और प्रतिभाशाली न था, किन्तु प्रजा की भलाई और हित क॰ उसे भी बहुत ख्याल था। अपने पिता की तरह वह भी निष्पक्ष शासक होना चाहता था। उस में दया, उदारता आदि बहुत से अच्छे गुण थे, लेकिन वह सुस्त और विलासी था और डटकर काम नहीं कर सकता था।

उसने गद्दी पर बैठते ही प्रजा की भलाई के लिए कई नियम बनाये और अपने बाप के समय के बडे अधिकारियों को ऊंचे पद दिये। जनता के हित के लिए उसने सराएं बनवायी तथा कुएं खुदवाये। शराब और अन्य नशे की चीजों पर उसने रोक
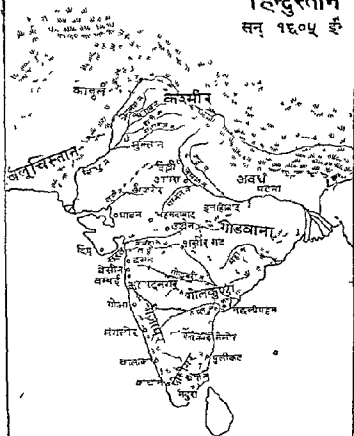
लगवायी और विशेष अवसरो पर जीव-हत्या को भी बन्द करा दिया। उसने साधारण से साधारण मनुष्य को न्याय पाने के लिए अपने तक पहुचाने की सुविधा प्रदान की। अपराधियों के नाक-कान काटना भी उसने बन्द करा दिया। राज्यारोहण के उपलक्ष में उसने बहुत से कैदियों को भी रिहा किया।

खुसरो का विद्रोह

किन्तु जहागीर के सिहासन पर बैठते ही उसके लडके खुसरो ने विद्रोह कर दिया।

सन् १६०६ मे खुसरो चुपचाप आगरे से भागा और मथुरा होता हुआ पजाब की ओर चला गया। पजाब में वह सिक्खो के गुरु अर्जुन से मिला। खुसरो ने लाहौर पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, किन्तु सफल न हुआ। जहाँगीर भी फौज लेकर लाहौर की ओर बढा। खुसरो और उसके साथी डर कर भाग खडे हुए, किन्तु चिनाब के पास पकड लिये गये। खुसरो को कैदखाने मे डाल दिया गया और उसके साथियों को बहुत बुरी तरह से मौत के घाट उतारा गया। गुरु अर्जुनदेव को भी विद्रोह के सन्देह मे प्राणदण्ड दिया गया। जहाँगीर के इस कार्य से सिक्खो मे असंतोष फैला और तभी से वे मुगल साम्राज्य से बैर करने लगे। गुरु अर्जुन के लडके ने सिक्खो को अब शस्त्र धारण करना सिखलाया और शत्रुओं से भिडने का आदेश दिया।

खुसरो को अपना सारा जीवन जेल में बिताना पडा। सन् १६२० मे उसे खुर्रम (शाहजहा) के सिपुर्द कर दिया गया।
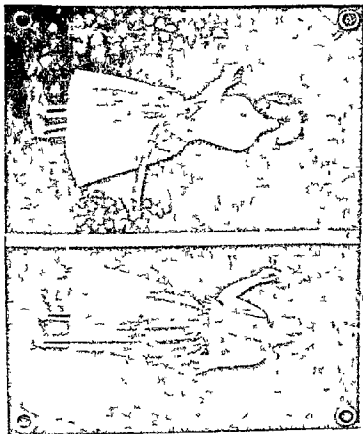
खुर्रम खुसरो से वैर रखता था। इसलिए खुर्रम ने दो वर्ष बाद खुसरो को मरवा डाला।

नूरजहाँ से विवाह (१६११)

सन् १६११ में जहाँगीर ने मेहरउन्निसा से शादी की और उसे नूरजहाँ की उपाधि दी। मेहरउन्निसा मिर्जा गयास बेग की लड़की थी जो तेहरान का रहने वाला था। गरीबी के कारण वह हिन्दुस्तान चला आया था। मेहरउन्निसा का विवाह पहले ईरानी अमीर बंगाल के सूबेदार शेर अफगन से हुआ था। सन् १६०७ में जहांगीर ने उसपर विद्रोह करने का आरोप लगाया और उसे गिरफ्तार करने के लिए कुतुबुद्दीन कोका को भेजा। इस पर शेर अफगन ने लड़ाई ठान दी। शेर अफ़गन मारा गया और उसकी पत्नी मेहरउन्निसा को उसकी लड़की समेत जहाँगीर के पास भेज दिया गया। इसके ४ साल बाद मेहरउन्निसा की जहाँगीर के साथ शादी हो गयी।

नूरजहाँ की बढ़ती के साथ उसके बाप और भाई आसफ खाँ की भी उन्नति हुई। उसके बाप को ऐतमादुद्दौला की उपाधि मिली और उसके तथा उसके लड़के आसफखाँ को राज्य में ऊँचे पद दिये गये। शेर अफगन से नूरजहाँ की जो लड़की हुई थी, उसका विवाह उसने शाहजादा शहरयार से करा दिया।

निःसन्देह नूरजहाँ बड़ी रूपवती, गुणवती और गर्वीली स्त्री थी। चतुर राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ वह बड़ी वीर और साहसी भी थी। बादशाह के साथ वह शिकार खेलने जाया करती थी। वह उदार और सहृदय भी थी और दीन-

नूरजहाँ

दुखियो की मदद किया करती थी। उसने अपने गुणो और रूप से जहागीर को अपनी मुट्ठी मे कर लिया था। सिक्को पर भी उसका नाम अकित किया जाता था। जहागीर राज-काज में उस से सलाह भी लिया करता था। उसके इस प्रभाव को देखकर बडे-बडे अमीर और सरदार उस से डरते और ईर्षा करते थे।

जहाँगीर की विजय

मेवाड के राणा प्रताप ने अकबर के आगे सिर नही झुकाया था। प्रताप की मृत्यु के बाद उसके लडके अमरसिंह ने भी सिर न झुकाया। अत जहागीर ने मेवाड पर कई बार आक्रमण करने के लिए सेनाए भेजी। लेकिन सफलता न हुई। अत मे सन् १६१४ मे एक बहुत बडी सेना के साथ शाहजादा खुर्रम को भेजा गया। इस बार राणा को विवश होकर मुगलो से सुलह कर लेनी पडी। किन्तु यह सुलह सम्मान के साथ हुई। राणा ने इस शर्त पर सधि की कि उन्हे स्वय मुगलो की सेवा में दरबार म नही जाना पडेगा।

अहमदनगर का आक्रमण

अहमदनगरको अकबर पूरी तरह से न दबा सका था। अकबर की मृत्युके बाद अहमदनगर के सुलतान के योग्य मत्री मलिक अम्बरने फिरसे निजामशाही राज्य को सगठित तथा सुव्यवस्थित कर लिया था। इस कार्यमें उसे मराठो से बहुत सहायता मिली। महान् शिवाजी के पिता शाहजी मलिक अम्बर का बहुत बडा सहायक था। मलिक अम्बर ने अहमदनगर के खोये हुए राज्य

पर अधिकार कर लिया। जहागीर ने तब सन् १६१० मे अब्दुल रहीम खानखाना को अहमदनगर पर चढाई करने को भेजा। उसके सफल न होने पर दूसरा सेनापति भेजा गया। जब वह भी सफल न हुआ तो फिर अब्दुल रहीम खानखाना को दुबारा भेजा गया। अन्त मे जब सन् १६१७ मे खुर्रम को चढाई करने को भेजा गया,तब अहमदनगर के सुलतान ने विवश होकर मुगलो की अधीनता स्वीकार कर ली। उस ने अहमदनगर का किला वापस कर दिया और खिराज देना भी स्वीकार किया।

इस विजय के उपलक्ष मे जहागीर ने प्रसन्न होकर खुर्रम को शाहजहा 'दुनिया का बादशाह' की उपाधि प्रदान की।

बंगाल, कांगड़ा

बगाल मे जहागीर के राज्यारोहण के समय से ही हिन्दू जागीरदार और पठान विद्रोह करने पर उतारू थे। बगाल के सूबेदार इस्लामखा ने कसकर विद्रोहियो को दबाया। सन् १६१२ में विद्रोही उसमान खा बुरी तरह से हारा और घाव लगने से मर गया।

जहागीर के समय की एक महत्वपूर्ण विजय कागड़ा (उत्तर-पूर्वी पंजाब) के दुर्ग की विजय थी (सन् १६२०)।

कंधार का पतन और शाहजहाँ का विद्रोह

कागडा को तो जीत लिया गया, लेकिन दूसरी तरफ सन् १६२२ में ईरान के बादशाह शाह अब्बास ने कन्धार मुगलो

से छीन लिया। जहागीर ने शाहजहा को कन्धार पर अधिकार करने के लिए भेजना चाहा, पर नूरजहां के षडयंत्रों के डर से उसने जाने से इन्कार कर दिया। शाहजहां को यह सन्देह हो गया था कि नूरजहा उसे दूर भेज कर अपने स्नेह-पात्र दामाद शहरयार को तख्त देना चाहती है। यही कारण था कि उस ने जाने से इन्कार कर दिया। नूरजहां सचमुच ही उसके खिलाफ थी। नूरजहां के भड़काने और शाहजहा के कन्धार जाने से इन्कार करने पर ज़हांगीर का क्रोध भभक उठा। उस ने शाहजहां को तुरन्त दक्षिण से वापस आने का हुक्म दिया। शाहजहां ने तब डरकर विद्रोह कर दिया और फौज लेकर दिल्ली की ओर बढ़ने लगा (१६२३)। किन्तु शाहजादा परवेज और महावत खां ने उसे हरा दिया। शाहजहां हारकर भागा; लेकिन जहा भी वह गया मुगल सेना ने उसका पीछा किया। असफल होने पर उसने अन्त में बादशाह से क्षमा माग ली और अपनी पत्नी मुमताज महलके साथ नासिक चला गया।

महावत खाँ का विद्रोह ; जहाँगीर की मृत्यु

महावत खा बहुत योग्य सेनापति था। शाहजहां को उसी ने परास्त किया था। वह शाहजादा परवेज को चाहता था। नूरजहां इस कारण उससे जलती थी। अत: नूरजहां ने उसे दबाना चाहा और उस पर कई प्रकार के अभियोग भी लगाये। इन कारणों से महावत खां भी विद्रोही हो उठा। सन् १६२६ में वह दक्षिण से अपने साथ ५,००० वीर राज-

पूत सैनिकों को लेकर पंजाब पहुंचा। जहांगीर और नूरजहा तब काबुल जा रहे थे और भेलम नदी के किनारे उनका पड़ाव पड़ा हुआ था। उसने साहस के साथ शाही खेमे को घेर कर जहांगीर को वन्दी बना लिया। नूरजहा ने महावत खां का मुकाबला किया। लेकिन वह भी वन्दी बना ली गयी। किन्तु कुछ समय बाद नूरजहां ने होशियारी से अपने और अपने पति जहांगीर को महावत खां की कैद से छुड़ा लिया। शाही सेना ने तब महावत खां पर आक्रमण करके उसे भगा दिया।

हारने पर महावत खां दक्षिण चला गया। इस बीच परवेज की मृत्यु हो चुकी थी; इसलिए महावत खां ने अब शाहजहा से मेल कर लिया।

जहांगीर का स्वास्थ्य इधर बहुत दिनों से बिगड़ता जा रहा था। आन्तरिक विद्रोहों के कारण उसकी अवस्था और भी खराब हो चली थी। अत. महावत खां से छुटकारा पाने के कुछ ही समय बाद जब वह काश्मीर से लौट रहा था तभी अक्तूबर सन् १६२७ में रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी लाश लाहौर में शाहदरा के मकबरे में गाड़ दी गयी।

अंग्रेजों का आगमन

जहांगीर का वर्णन समाप्त करने से पहले अंग्रेजों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। पहले-पहल जहांगीर के शासन काल में ही अंग्रेजों ने भारत से व्यापार करना शुरू किया था। आपको मालूम है कि पुर्तगाली हमारे मुल्क में बहुत पहले से व्यापार कर ही रहे थे। उन्हें इन व्यापारसे बहुत लाभ हो रहा

था। अत: उनकी देखा-देखी यूरोप की और जातियों ने भी हिन्दुस्तान के व्यापार से लाभ उठाने का इरादा किया। सन् १६१५ में इंगलैंड के बादशाह जेम्स प्रथम का राजदूत सर थामस रो भी व्यापारिक संधि करने के लिए जहाँगीर के पास आया। पुर्तगालियों ने बहुत सी अड़चनें डालीं; लेकिन रो ने सूरत में कोठी बनाने और भारत के साथ व्यापार करने का अधिकार प्राप्त कर ही लिया। सन् १६१९ में वह इंगलैंड वापस लौट गया। इस प्रकार अंग्रेजों ने पहले-पहल हिन्दुस्तान में पैर रखा और अन्त में जब मुगलों की शक्ति क्षीण हुई तो उन्होंने पूरे भारत को ही हड़प लिया।

शाहजहाँ का राज्यारोहण

जहाँगीर के पुत्रों में से खुसरो और परवेज मर चुके थे। केवल शहरयार और शाहजहाँ बचे थे। बादशाह के मरने पर नूरजहाँ ने शहरयार को तख्त पर बैठाना चाहा। लेकिन उसका भाई आसफखाँ शाहजहाँ को चाहता था; क्योंकि उसकी लड़की मुमताज उसे ब्याही थी। अत: आसफखाँ ने शाहजहाँ को तुरन्त दक्षिण से चले आने को लिखा और इधर उसने शहरयार को गिरफ्तार करके कैद में डाल दिया।

शाहजहाँ सन् १६२८ में आगरे चला आया और फरवरी के महीने में सिंहासन पर बैठा। उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी शहरयार को मरवा डाला और नूरजहाँ को पेन्शन देकर अलग कर दिया। नूरजहाँ अब लाहौर में रहने लगी और सन् १६४५ में वहीं पर उसकी मृत्यु हुई

शाहजहाँ का दरबार

सिंहासन पर बैठते ही शाहजहाँ ने अपने सहायक आसफखाँ का पद बढ़ाया और अन्य अमीरों तथा दरबारियों को भी उसने खूब पुरस्कार दिया। अकबर और जहाँगीर इस्लाम का विशेष आदर न करते थे, लेकिन उसने प्रारम्भ से ही इस्लाम को प्रश्रय प्रदान किया।

बुन्देलों और खानजहाँ लोदी का विद्रोह

शाहजहाँ के तख्त पर बैठने ही दो विद्रोह हुए—एक विद्रोह का नेता वीरसिंह बुन्देला का लड़का जुझार सिंह था और दूसरा विद्रोह दक्षिण में अफगान सरदार खानजहाँ लोदी ने किया था।

जहाँगीर ने वीरसिंह बुन्देला के जरिये ही अबुलफजल को मरवाया था। इसलिए उसने वीरसिंह को जागीर दी और दरबार में मान बढ़ाया। लेकिन वीरसिंह के मरने पर उसका लड़का जुझार सिंह चुपचाप बुन्देलखंड चला गया और ओड़छा में उसने विद्रोह कर दिया। शाहजहाँ ने तुरन्त उसे दबाने के लिए सेनाएँ भेजी। जुझार सिंह हार तो गया, पर इसके बाद भी वह विद्रोह करने से बाज न आया।

अन्त में वह सन् १६३५ में शाही सेना से पुन. हारकर जंगलों में भाग गया और वहाँ अपने लड़के सहित गोंडों द्वारा मार डाला गया।

अफगान सरदार खानजहाँ लोदी को भी कठोरता के साथ दबाया गया। दक्षिण जाकर वह अहमदनगर के सुलतान निजाम उल्मुल्क से मिल गया था। शाही सेना ने दक्षिण पहुँच

कर उसका पीछा किया। लेकिन खानजहाँ लगभग तीन साल तक शाही सेना का मुकाबला करता ही रहा। अन्त में कालिंजर के पास वह बुरी तरह से परास्त हुआ और मार डाला गया (१६३१)।

मुमताज महल की मृत्यु

खानजहाँ के विद्रोह के समय शाहजहाँ बुरहानपुर चला आया था। यहीं पर सन् १६३१ में उसकी पत्नी मुमताज महल को बच्चा पैदा हुआ, जिसमें उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु से शाहजहाँ को अत्यन्त दुख हुआ और उसे अपना संसार सूना ही सूना मालूम पड़ने लगा।

निसन्देह मुमताज अत्यन्त रूपवती और गुणवती स्त्री थी। अपने पति के प्रति वह बहुत अधिक श्रद्धा और भक्ति रखती थी। वह आसफखाँ की लड़की थी और सन् १६१२ में शाहजहाँ से उसका विवाह हुआ था। शाहजहाँ भी उसके प्रति बहुत स्नेह और श्रद्धा रखता था। अत अपने प्रेम को प्रगट करने के लिए शाहजहाँ ने मुमताज की कब्र पर ताजमहल का सुप्रसिद्ध मकबरा बनवाया। यह मकबरा सन् १६३२ में बनना शुरू हुआ था और सन् १६४३ में बनकर पूरा हो सका। यह मकबरा दुनिया की अद्भुत वस्तुओं में गिना जाता है। इसके जोड़ की इमारत ससार में कोई दूसरी नहीं है।

पुर्तगालियों का दमन

बहुत दिनों से पुर्तगालियों ने हुगली में अपने व्यापार का केन्द्र बना रखा था। वहाँ पर उन्होंने अपनी बहुत सी

कोठियाँ या इमारत बनाकर किलेबन्दी कर ली थी। ये लोग साधारण व्यापार को छोड़कर गुलामों का व्यापार भी करने लगे थे। इसके लिए ये अनाथ हिन्दू व मुस्लिम बच्चों को उठा ले जाते और उन्हें ईसाई बना लेते थे। एक बार उन्होंने
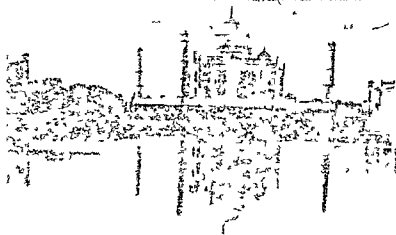
ताजमहल (आगरा)

मुमताज महल की दो बांदियों को भी भगा लिया था। अत उनके इन दुष्कर्मों से शाहजहाँ बड़ा कुपित हुआ और उसने बंगाल के सूबेदार को हुगली से पुर्तगालियों को निकाल देने की आज्ञा दी।

आज्ञा पाकर सूबेदार ने सन् १६३२ में हुगली पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के समय हजारों पुर्तगाली मारे

गये और हजारों गिरफ्तार कर लिये गये। इनमें से जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया उन्हें छोड़ दिया गया और बाकी जेल में ही सड़ते रहे। इस प्रकार हुगली के पुर्तगालियों का अन्त हुआ।

दक्षिण की विजय

अकबर के समय से ही मुगल बादशाहों ने दक्षिण के मुस्लिम राज्यों को हड़पने की नीति बना रखी थी। जहाँगीर ने भी अपने पिता की नीति पर चलते हुए अहमदनगर का बहुत सा भाग दबा लिया था। लेकिन दक्षिण के राज्यों को जीतने के लिए उसने जोरदार प्रयत्न नहीं किया था। पर शाहजहाँ ने भरसक दक्षिण के तीनों राज्यों—अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीजापुर को हड़पने का निश्चय किया। सब से पहले उस ने महाबतखाँ को अहमदनगर पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। उसने अहमदनगर के मन्त्री फतहखाँ को अपनी ओर मिलाकर सन् १६३३ में दौलताबाद का किला ले लिया और अहमदनगर के सुल्तान हुसैनशाह को कैद कर लिया। इस प्रकार निजामशाही राज्य का अन्त हो गया और सारा अहमदनगर मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

इसके बाद शाहजहाँ ने गोलकुण्डा और बीजापुर के सुलतानों को अधीनता स्वीकार करने को कहा और स्वयं एक बहुत बड़ी फौज लेकर दौलताबाद जा पहुँचा। गोलकुण्डा के सुलतान ने डर कर खिराज देना कबूल करके अधीनता स्वीकार कर ली; लेकिन बीजापुर ने मुगल बाद-

लाल किला

शाह की बातों पर ध्यान न दिया। इस पर शाहजहाँ ने बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। लाचार होकर अन्त में बीजापुर के सुल्तान ने भी अधीनता स्वीकार कर ली (१६३६)। दक्षिण के चार प्रदेशों—खानदेश, बरार, तेलगाना और दौलताबाद के शासन के लिए शाहजहाँ ने अपने बेटे औरंगजेब को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। सन् १६३६ से आठ वर्ष तक औरंगजेब दक्षिण में रहा। इस बीच औरंगजेब ने बगलाना को जीता और विद्रोही शाहजी भोसला को आधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया।

कंधार

सन् १६२२ में जहांगीर के समय कन्धार पर फारस के शाह अब्बास ने अधिकार कर लिया था। शाहजहाँ ने सन् १६३८ में कन्धार के ईरानी सूबेदार अली मर्दानखाँ को अपनी ओर मिलाकर कन्धार पर अधिकार कर लिया।

किन्तु दस वर्ष बाद ईरान के शाह ने फिर कन्धार अपने कब्जे में कर लिया। शाहजहाँ ने तब दो बार औरंगजेब व दारा को कंधार पर चढ़ाई करने को भेजा, लेकिन तीनों आक्रमण असफल रहे। इन आक्रमणों में बहुत सी रुपया व्यय हुआ और हाथ कुछ भी न लगा।

औरंगजेब का दक्षिण लौटना और गोलकुण्डा तथा बीजापुर पर आक्रमण

सन् १६५४ में औरंगजेब दक्षिण में वापस बुला लिया गया

था। कन्धार के आक्रमण से लौटने के बाद सन् १६५३ में वह फिर दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। उसने दक्षिण में पहुँचकर पहले अपने अधीन प्रदेशों की व्यवस्था की और तब गोलकुण्डा और बीजापुर की शिया रियासतों को नष्ट करने का उपाय सोचने लगा। गोलकुण्डा के सुल्तान ने बहुत समय से खिराज न चुकाया था, इसलिए औरंगजेब को आक्रमण का बहाना मिल गया। सुल्तान से अप्रसन्न होकर उसका मंत्री मीर जमला भी औरंगजेब से मिल गया। औरंगजेब ने सुअवसर देखकर गोलकुण्डा को घेर लिया। वह पूरे गोलकुण्डा को ही हड़प जाता, लेकिन शाहजहाँ ने उसे तुरन्त घेरा उठा देने की आज्ञा भेजी। इस तरह कुछ समय के लिए गोलकुण्डा का राज्य नष्ट होने से बच गया। मीर जमला को शाहजहाँ ने अपनी सेवा में रख लिया।

गोलकुण्डा से हटने पर औरंगजेब ने बीजापुर की ओर रुख किया। शाहजहाँ से आज्ञा लेकर उसने बीजापुर को घेर लिया और बीदर तथा कल्याणी पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब बीजापुर को पूरी तरह से नष्ट कर देता; लेकिन शाहजहाँ ने यहाँ भी हस्तक्षेप किया और उसे युद्ध रोक देने का हुक्म भेजा। अतः बीदर, कल्याणी के किले तथा लड़ाई का हर्जाना लेकर औरंगजेब ने बीजापुर से संधि कर ली।

सिंहासन के लिए युद्ध

अपने लड़कों के गृह-युद्ध के कारण शाहजहाँ के अन्तिम दिन बहुत दुःख और शोक में व्यतीत हुए। सन् १६५७ में वह बहुत

दीवाने-आम (लाल किला)

बीमार पडा जिस कारण उसके लडको म सिंहासन पाने क लिए युद्ध छिड गया। उसके चार लडके थे—दाराशिकोह, शुजा, औरगजेब और मुराद। उसकी दो लडकियाँ भी थी– जहाँआरा और रोशनआरा। दारा सबसे बडा था और शाहजहाँ उसे बहुत प्यार करता था। राज्य का वही उत्तराधिकारी था। दारा उदार विचारो का और विद्यानुरागी व्यक्ति था। उसमें धार्मिक पक्षपात नही था। वेदान्त की ओर उसका विशेष झुकाव था। उसने उपनिपदो का फारसी मे अनुवाद कराया था। वह हिन्दू-मुसलमानो मे मेल कराना चाहता था। लेकिन वह क्रोधी और अभिमानी भी था और उसमे व्यवहारिकता न थी। शुजा वीर था,लेकिन विलास में लिप्त रहा करता था। मुराद असाधारण वीर था, लेकिन मूर्ख था और राजनीति की चालो को न समझता था। लेकिन औरगजेब बहुत ही कूट–नीतिज्ञ और कुशल योद्धा तथा सेनापति था। राजनैतिक छल-कपटो मे भी वह पूरा निपुण था।

शाहजहाँ के सख्त बीमार पडने के समय दारा बादशाह के पास आगरे में ही था। शेप भाइयो में से शुजा तब बगाल मे सूबेदार थी, मुराद गुजरात मे था और औरगजेब दक्षिण म था। शाहजहाँ की बीमारी का समाचार पाकर शुजा और मुराद ने फौरन अपने आप को सम्राट घोपित कर दिया, लेकिनऔरगजेब ने उचितअवसर की प्रतीक्षा की। उसने सम्राट बनाने का वचन देकर मुराद को अपनी तरफ मिला लिया। मुराद उसकी चाल में आ गया और अपनी फौज लेकर मालवे म

औरंगजेब से जा मिला। दूसरी तरफ से शुजा भी अपनी फौज के साथ बनारस तक आ पहुंचा।

शाहजहां ने शुजा का मुकाबला करने के लिए दारा के लड़के सुलेमान शिकोह को भेजा। शुजा हार कर बंगाल लौट गया। दूसरी तरफ औरंगजेब और मुराद को रोकने के लिए बादशाह ने सेनापति राजा जसवन्तसिंह और कासिम खां को भेजा। उज्जैन के पास औरंगजेब और मुराद का शाही सेना से युद्ध हुआ (१६५८)। शाही सेना हार गयी और जसवन्त सिंह भाग कर जोधपुर चला गया।

औरंगजेब और मुराद की सेनाएं आगे बढ़ती गयी और चम्बल नदी को पार कर आगरे के पास सामूगढ़ में आ पहुंची। तब दारा ने फौज लेकर उनका सामना किया। इस बार भी औरंगजेब और मुराद की विजय हुई और दारा मुगल सिंहासन से हाथ धोकर अपने परिवार सहित दिल्ली होता हुआ पंजाब की ओर भाग गया।

इधर औरंगजेब ने आगरे में घुस कर किले पर अधिकार करके अपने पिता शाहजहां को कैद कर लिया। इसके बाद औरंगजेब ने तख्त देने के बजाय मुराद को भी ग्वालियर के किले में कैद करा दिया और अन्तमें हत्या का अभियोग लगाकर उसे मृत्यु-दंड देकर मरवा भी डाला।

मुराद को कैद में डाल कर औरंगजेब ने दिल्लीके तख्त को ग्रहण किया (जुलाई १६५८)। इसी समय शुजा तख्त लेने की इच्छा से फिर इलाहाबाद तक बढ़ आया। औरंगजेब

ने समुवा म शुजा का मुकाबला किया। शुजा हार कर भ
गया । मुगल सेनापति ने उसका पीछा किया। शुजा भाग
हुआ अन्त मे आराकान चला गया और वही सभवत
अराकानियो द्वारा सपरिवार मार डाला गया।

दारा की हार हो जाने के कारण उसके लडके सुलेमान शिक
का भी उसके सेनापतियो और साथियो ने साथ छोड दिय
सुलेमान शिकोह तब भागकर गढवाल के राजा की शरण में च
गया। वृद्ध राजा ने अपने शरण मे आये हुए सुलेमान को शर
दी और उसके साथ क्षत्रियोचित व्यवहार किया। लेकिन रा
के लडके ने डर कर सुलेमान को शत्रुओं के हाथ मे थमा दि
(१६६०)। बन्दी शाहजादे को ग्वालियर के किले में कै
कर दिया गया, जहा पर कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी

सुलेमान के पिता दारा का भी इसी प्रकार करुणाजन
अन्त हुआ। औरगजेब के भय से दारा पजाब होता हुआ अन्त
गुजरात पहुचा । वहा के सूबेदार की मदद से कुछ
सेना बटोर कर एक बार फिर उस ने औरगजेब के साथ
अजमेर के पास युद्ध किया। लेकिन इस बार भी वह हार गया।
औरगजेब के सेनापतियो ने पराजित दारा को गिरफ्तार करने
के लिए उसका पीछा किया। दारा भागता हुआ अन्त में बोलन
दर्रे के पास दादर तक जा पहुचा। लेकिन वहा के दुष्ट
अफगान सरदार मलिक जीवन ने दारा को उसके लडके
और लडकियो सहित मुगल सेनापति बहादुर खा के
हवाले कर दिया। दारा दिल्ली लाया गया। औरंगजेब

ने उसे अपमानित करने के लिए एक गन्दे हाथी पर बिठा कर शहर में घुमवाया और अन्त में उसे मरवा भी डाला। इस प्रकार अपने सारे प्रतिद्वन्दियों का अन्त करके औरंगजेब भारत का शाहंशाह बना। शुजा और दारा की इस हार के बाद उसने दुबारा अपना राज्याभिषेक किया और आलमगीर व पादशाह की उपाधियां धारण की। अपने पिता शाहजहांको उसने अन्त तक जेल में ही रखा। सन् १६६६ में बन्दी अवस्था में ही शाहजहां की मृत्यु हुई।

शाहजहाँ

शाहजहां अपने पिता की तरह विलासी न था। वह वीर बुद्धिमान और न्यायी शासक था। अपनी प्रजा का उसे बहुत ध्यान था। इसी कारण शाहजहाँ न्यायी सम्राट के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन इस्लाम-धर्म का पक्षपाती होने के कारण वह अपने पिता और दादा की तरह दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णु न था। उसने अनेक देव-मन्दिरों को तुड़वा दिया था। परन्तु इस अवगुण के होते हुए भी उसने साम्राज्य का योग्यतापूर्वक शासन किया।

शाहजहां का राज्यकाल मुगल साम्राज्य का 'स्वर्ण युग' भी माना जाता है। राज्य में शांति होने से उस समय भारत का देश-विदेशों के साथ बहुत व्यापार चलता था। इससे देश की समृद्धि बढ़ गयी थी। मुगलों का वैभव भी अपने उत्कर्ष पर पहुंच गया था। शाहजहां के वैभव की छटा उसकी बनवायी हुई इमारतों में आज भी दिखाई पड़ती है। उसका बनवाया ताज

महत्व संसार भर में अद्वितीय है। दिल्ली का विशाल लाल किला और जामा मस्जिद शाहजहां के वास्तुकला प्रेम के उत्कृष्ट प्रतीक हैं। उसका बनवाया हुआ तख्त ताऊस (मयूर सिंहासन), कारीगरी का बेजोड़ नमूना है।

मुगल बादशाहों को बाग लगाने का भी बहुत शौक था। शाहजहां ने आगरे, दिल्ली, लाहौर और काश्मीर में बड़े सुन्दर बाग बनवाये थे। ये बाग बहुत ही सुन्दर और रमणीक हुआ करते थे। शाहजहां का बनवाया हुआ शालीमार बाग आज भी लाहौर में विद्यमान है, यद्यपि उसकी मुगल कालीन शोभा अब नहीं रह गई है।

किन्तु वैभव की इस छटा को देख कर यह न समझना

महल संसार भर में अद्वितीय है। दिल्ली का विशाल लाल किला और जामा मस्जिद शाहजहां के वास्तुकला प्रेम के उत्कृष्ट प्रतीक हैं। उसका बनवाया हुआ तख्त ताऊस (मयूर सिंहासन) जौहरीकला का बेजोड़ नमूना है।

मुगल बादशाहों को बाग लगाने का भी बहुत शौक था। शाहजहां ने आगरे, दिल्ली, लाहौर और काश्मीर में कई सुन्दर बाग बनवाये थे। ये बाग बहुत ही सुन्दर और रमणीक हुआ करते थे। शाहजहां का बनवाया हुआ शालीमार बाग आज भी लाहौर में विद्यमान है, यद्यपि उसकी मुगल कालीन शोभा शेष नहीं रह गई है।

किन्तु वैभव की इस छटा को देख कर यह न समझना चाहिए कि जनता भी इसी तरह समृद्धिशाली थी। प्रान्तीय शासक जनता का बहुत शोषण करते थे। मुगल वैभव के प्रदर्शन, इमारतों के निर्माण, सेना के व्यय आदि के लिए बहुत धन की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को पूरा करने का अधिकतर भार किसानों पर ही पड़ता था। फलतः किसानों की आर्थिक दशा बिगड़ गयी और साम्राज्य भीतर से खोखला हो गया। क्या ही अच्छा होता यदि वैभव के प्रदर्शन पर व्यय करने के बजाय जनता की आर्थिक दशा सुधारने पर धन का उपयोग किया जाता। किन्तु यह सोच कर कुछ संतोष हो जाता है कि इस धन के उपयोग से कला की कतिपय अनुपम कृतियों का भी निर्माण हुआ है।

शाहजहां का अन्त बहुत ही दयनीय हुआ। अपने बेटे-बेटियों को वह बहुत प्यार करता था। किन्तु अपने ही बेटे औरंगजेब
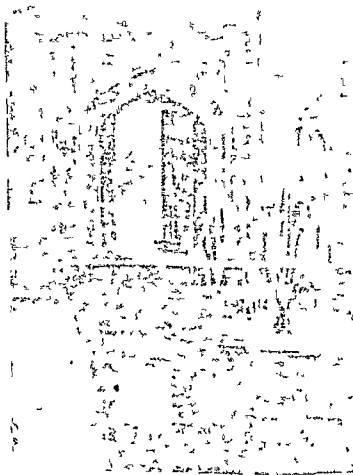
शालीमार बाग (पुराना दरवाजा)

के कारण उसे अपार दुःख उठाना पड़ा। तीस वर्ष वैभव और प्रभुता के साथ बिताने के बाद उसका अंतिम जीवन एक असहाय बंदी के रूप में समाप्त हुआ। भाग्य का यह कैसा खेल था?

अभ्यास के लिए प्रश्न—

१– खुसरो ने कब विद्रोह किया और उसका क्या परिणाम हुआ?

२– नूरजहाँ कौन थी और वह क्यों प्रसिद्ध हुई है?

३– जहाँगीर ने किन-किन देशों की विजय की?

४– शाहजहाँ ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह क्यों किया?

५– महाबतखाँ के विद्रोह के बारे में आप क्या जानते हैं?

६– शाहजहाँ कब और कैसे गद्दी पर बैठा?

७– शाहजहाँ के समय में किस-किस ने विद्रोह किया और उसका फल क्या हुआ?

८– पुर्तगालियों का शाहजहाँ ने क्यों दमन किया?

९– शाहजहाँ का बीजापुर और गोलकुण्डा से नाता कैसा रहा?

१०–उत्तराधिकार के युद्ध में किसकी जीत हुई और क्यों?

११–शाहजहाँ के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

—————

अध्याय १८

औरंगजेब

(१६५८–१७०७)

उत्तराधिकार के युद्ध के कारण अव्यवस्था फैलना स्वाभाविक था। इसके कारण शासन मे जो दोष पैदा हो गये थे, उनसे लोगो को कष्ट हो रहा था। औरंगजेब ने पहले इन कष्टो को दूर करने का प्रयत्न किया। उस ने व्यापार आदि पर से बहुत से कर उठा दिये। अन्न को सस्ता करने के लिए उसे भी कर से मुक्त कर दिया। लेकिन कट्टर सुन्नी होने से उसने बहुत से ऐसे धार्मिक पक्षपात के कार्य भी किये जिसकी वजह से हिन्दू, सिक्ख और राजपूत आदि अप्रसन्न हो गये। यही कारण है कि उस के समय मे इन लोगो के बहुत से विद्रोह हुए जिसके कारण मुगल साम्राज्य की इमारत में दरारे पैदा हो गयीं और औरंगजेब कभी सुख की नींद न सो सका। उसकी धार्मिक नीति क्या थी और उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई, यह आगे की घटनाओ को देखने से साफ हो जायगा।

कूच बिहार और आसाम

साम्राज्य के पूर्वी सीमान्त पर स्थित कूच विहार और आसाम के राजा उपद्रव मचाते रहते थे। अत औरगजेब ने बगाल के सूबेदार मीर जुमला को उन पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उसने कूच विहार और फिर आसाम पर विजय प्राप्त की। लेकिन मीर जुमला जब आसाम के राजा से सधि करके वापस लौट रहा था, तो रास्ते मे ही उसका देहान्त हो गया (१६६३)।

चटगॉव और सोन द्वीप

औरगजेब ने मीर जुमला के बाद अपने मामा शाइस्ता खॉ को बगाल का सूबेदार नियुक्त किया। उसने सोन द्वीप (बगाल की खाडी) पर अधिकार करके पुर्तगाली समुद्री-डाकुओ को मार भगाया और उनके मित्र आराकान के राजा से चटगॉव छीन लिया (१६६६)।

उत्तर-पश्चिमी सीमान्त

उत्तरी–पश्चिमी सीमान्त पर भी पठान जातियो ने औरग-जेब के समय मे उपद्रव किये। इन जातियो में अफरीदी, यूसुफ-जई और खटक आदि प्रमुख थी। ये लोग भारत से काबुल आने-जाने वाले व्यापारियो से कर लिया करते थे और मौका मिलने पर उन्हे लूट भी लेते थे। औरगजेब ने पहले उन्हे धन देकर शात रखने का प्रयत्न किया। लेकिन १६६७ में यूसफजइयो का दल सिंधु को पार कर अटक तक आ पहुंचा। मुगल

म अकबर के किये-कराये पर ही पानी फेर दिया। अकबर, … राष्ट्रीयता की भावना को मिटा कर उसने इस्लाम को … का आधार बनाया और कुरान की आज्ञाओं के … शासन करना शुरु किया। उसकी इस भूल के कारण हिन्दू राजपूत और सिख सभी असतुष्ट हो गये और विद्रोह … लगे।

जाटों का विद्रोह

मथुरा का फौजदार अब्दुलनबी भी अपने मालिक औरं… जेब के जैसा ही अत्याचारी था। उसके अत्याचारों से जाट अप्रसन्न हो उठे। गोकुल के नेतृत्व में जाटों ने विद्रोह खड़ा कर दिया और सन् १६६९ में मथुरा के फौजदार को मार डाला। औरंगजेब ने बड़ी कठोरता के साथ इस विद्रोह को दबाया। जाटों ने भी काफी दिन तक मुगलों का डट कर सामना किया। अन्त मे गोकुल पकड़ कर आगरे लाया गया और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले गये। लेकिन इस कठोर दमन के बाद भी जाट विद्रोह करते ही रहे और मुगलों के विनाश के कारण बने।

सतनामियों का विद्रोह

सन् १६७२ में मेवात तथा नारनोल प्रदेश के सतनामियों ने भी मुगलों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। किसी मुगल सैनिक ने एक सतनामी को मार डाला था। इसी कारण सतनामी लोग बिगड़ उठे थे। सतनामी बड़े धार्मिक लोग थे और उनमें से अधिकांश छोटा-मोटा व्यापार और खेती करते थे। विद्रोह करते हुए इन लोगों ने नारनोल पर कब्जा कर …

शाही सेना ने उन्हें बुरी तरह से परास्त किया और उस प्रदेश से मार भगाया।

छत्रसाल का विद्रोह

जुझार सिंह के बाद चम्पतराय बुन्देला ने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह जारी रखा। शाहजहा के समय में उसने पहले विद्रोह किया। किन्तु असफल होने पर उसने मुगल दरबार में नौकरी कर ली। सन् १६५८ में दारा शिकोह के व्यवहार से अप्रसन्न होकर चम्पतराय औरंगजेब से जा मिला और गृह-युद्ध में उसकी तरफ से लड़ता रहा। किन्तु कुछ ही समय बाद चम्पतराय औरंगजेब का साथ छोड़ कर बुन्देलखंड चला गया और उसने मालवे के सारे रास्ते रोक दिये। परन्तु वह अधिक दिन तक मुगलों के विरुद्ध टिक न सका और अन्त में सन् १६६१ में स्वतन्त्रता के लिए लड़ते हुए उसने अपनी पत्नी सहित प्राण दे दिये। किन्तु चम्पतराय के वीर पुत्र छत्रसाल ने बुन्देलों की स्वतन्त्रता का दीपक बुझने न दिया। वह शिवाजी से भी मिला। छत्रपति शिवाजी ने उसका उत्साह बढ़ाया और स्वतन्त्रता के लिए लड़ते रहने की सलाह दी। फलत २२ वर्ष का होने पर सन् १६७१ से लगभग ५० वर्षों तक छत्रसाल मुगलों के साथ लोहा लेता रहा। इस बीच उसने अनेक मुसलमान सेनापतियों को परास्त किया। अपने अथक प्रयत्न से अन्त में छत्रसाल ने पूर्वी मालवा में अपना स्वतन्त्र राज्य कायम कर लिया जिसकी राजधानी पन्ना थी। यह महान स्वतन्त्रता का योद्धा ८२ वर्ष का होकर परलोक सिधारा।

सिख ओर औरंगजेब

जहागीर द्वारा गुरु अर्जुन सिंह के मारे जाने स मिख मुगलों से असतुष्ट हो गये थे। इसी कारण अर्जुन सिह के लडक गुरु हरगोविन्द सिंह (सन् १६०६–१६३८) ने सिखो को शस्त्र ग्रहण करने का आदेश देकर मुगलो से लड़ने के लिए प्रेरित किया था। यदि गुरु अर्जुन वाली घटना क बाद भी मुगल बादशाह सिखो के साथ अकबर की तरह सहिष्णुता की नीति से काम लेते तो शायद सिख और मुगलो में फिर मेल हो जाता। क्योंकि सिख अपनी तरफ से मेल करने को तैयार थे। हरगोविन्द सिह का लडका तेग बहादुर जब गुरु हुआ तो उन्होंने मुगलो की तरफ से आसाम के युद्ध मे भाग लिया था। किन्तु औरगजेब के धार्मिक अत्याचारो के कारण वे भी अन्त मे रुष्ट हो गये। औरगजेब ने जब कश्मीर के ब्राह्मणो को मुसलमान होने को कहा तो गुरु तेग बहादुर ने उन्हें ऐसा न करनेका आदेश दिया। औरगजेब गुरु की इन चेष्टाओ को न सह सका। गुरु को बन्दी बना कर दिल्ली लाया गया

गियों का पूरी तरह से सगठन किया और सिख-राज्य की स्थापना के लिए प्रयत्न करते रहे। उनके इस प्रयत्न में उनके दो लड़के भी मारे गये। सन् १७०६ में उन्होंने मुगल बादशाह औरगजेब से सुलह कर ली। औरगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह को उन्होंने राज्य प्राप्ति मे सहायता भी पहुचायी। उनके साथ वे दक्षिण भी गये जहा सन् १७०८ में किसी अफगान ने उनकी हत्या कर डाली।

राजपूतो से युद्ध

अकबर ने अपनी मेल-जोल की नीति से जिन राजपूतो का मुगल साम्राज्य के भवन का स्तम्भ बनाया था, औरगजेब ने अपनी दुर्नीति से उन्हे भी मुगल साम्राज्य का शत्रु बना दिया। जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह जब सीमा-प्रान्त के अफगानो को दबाने के लिए भेजे गये थे, तब वही खैबर के दर्रे के पास जमरूद म उनकी मृत्यु हो गयी थी। इस अवसर का लाभ उठा कर औरगजेब ने मारवाड़ को हड़पने का निश्चय किया। उसने फौरन अपने अधिकारी भेज कर मारवाड़ का शासन अपने हाथ में ले लिया। इधर सीमा-प्रान्त से लौटते हुए जसवन्त सिंह की महारानी को लाहौर म एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम अजितसिंह रखा गया। जसवन्तसिंह के अनुयायी राजपूत सरदारों ने बादशाह से प्रार्थना की कि अजित सिंह को मारवाड़ का शासक स्वीकार करले। लेकिन औरगजब न बात टाल कर जसवन्त सिंह की रानियो और बच्चे को दिल्ली म ही रोक लिया। किन्तु वीर राठौर दुर्गादास ने औरगजेब की कुचाल का

पूरा न होने दिया। दुर्गादास जसवन्त सिंह के मंत्री आसकर्ण का लडका था। अपनी वीरता धीरता राजनीतिज्ञता और देश-प्रेम तथा सच्चरित्रता के कारण वह अपना नाम अमर कर गया है। उसने बहुत वीरता पूर्वक लड-भिड कर बडे कौशल के साथ रानियो और बच्चे को मुगलो के चगुल मे छुडा लिया और उन्हें सकुशल जोधपुर पहुचा दिया। औरगजेव ने तब क्रुद्ध होकर मारवाड को रौंदने के लिए सेनाए भेजी और स्वय भी अजमेर चला गया (१६७९)।

औरगजेव की इस दमन नीति के कारण मवाड भी विद्रोही बन गया। जसवत सिंह की रानी मेवाड की राजकुमारी थी, इसलिए रानी के मदद मागने पर मेवाड के राणा ने जोधपुर के राठौरो का साथ दिया। औरगजेव ने तब मेवाड पर भी चढाई की। मुगलो ने सारे मेवाड को रौंद डाला और राणा भाग कर पहाडो मे जा छिपा। औरगजेव ने चित्तौड में अपने पुत्र अकबर को नियुक्त किया और स्वय अजमेर चला आया। किन्तु बादशाह के हटते ही राजपूतो ने फिर मुगलो को परेशान करना शुरू कर दिया। अकबर राजपूतो को दबाने में समर्थ न हो सका। इसलिए औरगजेब ने उसे वहा से हटा कर मारवाड भेज दिया। वहा पहुच कर अकबर राजपूतो से मिल गया। औरगजेव ने भी चालाकी से काम लिया और राजपूतो के दिल मे अकबर के प्रति सदेह उत्पन्न कर दिया। फलत राजपूतो ने अकबर का साथ छोड दिया। अभागा शाहजादा तब भाग कर पहले शम्भा-जी के पास पहुचा और अन्त में फारस चला गया। वहा पर

सन् १७०४ में उसकी मृत्यु हो गयी।

इधर सन् १६८१मे विवश होकर मेवाड़के राणा राज सिंहने औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कर ली और जजिया के बदले में कुछ प्रदेश मुगलो को दे दिये। लेकिन मारवाड के राजपूत अपनी स्वतन्त्रता के लिए आखिर तक लड़ते ही रहे। अन्त में औरंगजेब के मरने पर उसके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने यह स्वीकार कर लिया कि अजितसिंह मारवाड के राजा और अधिपति है।

औरंगजेब के राजपूत युद्धोका परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए घातक हुआ। राजपूत जो पहले मुगल साम्राज्य के बहुत बड़े सहायक थे, अब मुगलों के जानी दुश्मन हो गये। इस प्रकार औरंगजेब की अनुचित दमन नीति ही मुगल साम्राज्य के पतन का कारण हुई।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१- औरंगजेब के समय में अनेक विद्रोह होने के क्या कारण थे
२- छत्रसाल कौन था? उसके कार्यों पर प्रकाश डालिए?
३- औरंगजेब ने सिवा को कैसे अपना शत्रु बनाया?
४- राजपूतों के साथ औरंगजेब ने क्यों युद्ध किया?

स्वीकार कर ली। बाद मे वे बीजापुर क यहा नौकरी करने लगे थे।

इन्ही शाहजी भोसले की वीर पत्नी जीजा बाई के गर्भ से महान् शिवाजी न सन् १६२७ मे जन्म लिया। इनका बाल्यकाल पूना मे व्यतीत हुआ। इनकी माता बाल्यकाल मे इन्हें रामायण और महाभारत के वीरो की कहानिया सुनाया करती थी। इन कहानियो का बालक शिवाजी पर अमिट प्रभाव पड़ा। उनके गुरु दादाजी कोडदेव ने उन्हे राजकुमारो के योग्य युद्ध की शिक्षा दी।

शिवाजी और बीजापुर-राज्य

इस प्रतिभाशाली बालक ने १९ वर्ष की उम्र में ही महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता का युद्ध छेड दिया और बीजापुर से तोरण का किला ले लिया। सन् १६४७ मे शिवाजी क गुरु स्वर्ग सिधार गये। उधर उनके विद्रोह के कारण बीजापुर के सुलतान ने शाह जी को कैद मे डाल दिया। इस कारण कुछ समय तक शिवाजी ने युद्ध रोक दिया। लेकिन कुछ समय बाद शिवाजी ने बीजापुर से पुरन्दर और जवाली ले लिये। तब सन् १६५९ में बीजापुर के सुलतान ने उन्हे दबाने के लिए सरदार अफजल खा को भेजा, लेकिन वह स्वय शिवाजी द्वारा मार डाला गया। शिवाजी को दबाना कठिन समझ कर बीजापुर के सुलतान ने अत मे उनसे सधि कर ली।

शिवाजी और मुगल

शिवाजी का हौसला अब बहुत बढ गया और वे मुगल

प्रान्तों पर भी छापा मारने लगे। औरंगजेब ने अपने मामा शाइस्ता खां को दक्षिण का सूबेदार बनाकर शिवाजी को दबाने के लिए भेजा (१६६०)। शाइस्ता खां की मदद के लिए राजा जसवन्त सिंह भी भेजे गये। किन्तु वे मराठों को दबाने में असफल रहे। शिवाजी ने पूना में शाइस्ता खां के डेरे पर आक्रमण किया और उसके बहुत से आदमियों को मार डाला। शाइस्ता खां स्वयं अंगुलियाँ कटवाकर किसी तरह वहां से भाग निकला। औरंगजेब ने तब शाइस्ता खां को बंगाल भेज दिया और जसवन्त सिंह को वापस बुला लिया। इसके बाद शिवाजी ने सूरत पर छापा मारा। औरंगजेब ने घबड़ा कर तब राजा जयसिंह को दक्षिण भेजा। राजा जयसिंह से मोर्चा लेना ठीक न समझ कर शिवाजी ने पुरन्दर में मुगलों से संधि कर ली (१६६५) और अपने कुछ किलों को मुगलों के अधिकार में दे दिया। राजा जयसिंह के कहने पर शिवाजी आगरे पहुंच कर औरंगजेब के दरबार में भी उपस्थित हुए। लेकिन वहां उचित सत्कार न होने से वे बहुत रुष्ट हुए। इस पर औरंगजेब ने शिवाजी को उनके पुत्र शम्भा जी के सहित कैदमें डाल दिया। परन्तु कूटनीतिज्ञ शिवाजी अपूर्व कौशल के साथ अपने बेटे सहित कैद से भाग निकले और अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए अन्त में दक्षिण पहुंच गये।

छत्रपति शिवाजी

कुछ समय तक शिवाजी अपने राज्य का संगठन करने में लगे रहे। ताकत बढ़ा लेने पर उन्होंने मुगलों से फिर युद्ध

छेड़ दिया। उन्होने मुगलों के प्रदेशो से चौथ भी वसूल की। सूरत को दुबारा लूटा। उनकी शक्ति अब बहुत बढ गई थी। शिवाजी ने अब रायगढ मे अपना राज्याभिषेक भी करवा लिया और छत्रपति की उपाधि ग्रहण की। इस प्रकार शिवाजी ने महाराष्ट्र मे अपना स्वराज्य कायम कर लिया। कुछ समय बाद शिवाजी ने तंजौर के कुछ अंश तथा जिंजी और वेल्लौर पर भी अधिकार कर लिया। सन् १६८०मे इस महान् महाराष्ट्र के नायक और राजा की मृत्यु हो गयी।

शिवाजी का शासन-प्रबन्ध

शिवाजी जैसे वीर और योद्धा थे वैसे ही चतुर राजनीतिज्ञ और कुशल शासक भी थे। राज्य की सु-व्यवस्था और प्रजा के सुख की उन्हें सदैव चिन्ता रहती थी। शासन प्रबन्ध के लिए उन्होंने एक शासन-समिति बनायी जिसमें आठ मंत्री या सचिव थे, जो 'अष्ट-प्रधान' कहलाते थे। प्रधान मंत्री पेशवा कहलाता था। योग्य और वीर पुरुषों को ही मंत्री पद दिया जाता था। मंत्री-गण राज्य के विभिन्न विभागो का प्रबन्ध किया करते थे। राज-कर्मचारियो को जागीर के बजाय नकद वेतन दिया जाता था। शासन के सुभीता के लिए पूरा राज्य प्रान्तो में विभक्त था जिनके शासन के लिए प्रान्तीय शासक नियुक्त किये जाते थे।

मालगुजारी

मालगुजारी का प्रबन्ध अच्छा था। अकबर की तरह शिवाजी ने भी जमीन की पैमाइश करायी थी। किसानो से उपज का २।५ भाग कर के तौर पर लिया जाता था। यह कर

मु ग ल
सा म्रा ज्य
पूना
हैदराबाद
मद्रास
जिंजी
तंजौर
गोआ
पो ली ग र
रा ज्य
शिवाजी का साम्राज्य
सन १६८० ई०
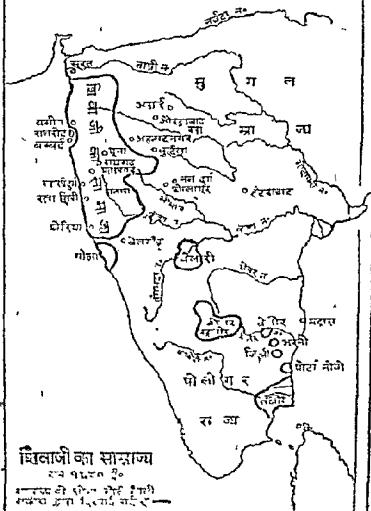
नकद अथवा अनाज क रूप म भी दिया जा सकता था। अकाल के समय राज्य की तरफ स कर में छूट देकर मदद भी दी जाती थी। किसानो का राज्य स सीधा सबंध था। बीच म कर वसूल करने वाले ठेकेदार नहीं रखे जाते थे। इस सु-प्रबन्ध से किसानो को बहुत लाभ हुआ और उनकी दशा सुधर गयी।

सेना—सेना के तीन अंग थे—सवार, पैदल और तोपखाना। हिन्दू व मुसलमानदोनो सेना म भर्ती किये जाते थे। सेना विभाग के नियम बहुत सुन्दर थे। सैनिको को यह निर्देश था कि युद्ध के समय स्त्रियों और बच्चो को कैद न कर, मन्दिर-मस्जिद को न तोडें और न किसी की धर्म पुस्तक को नष्ट करे। इस प्रकार शिवाजी असाधारण योद्धा, सगठनकर्त्ता और कुशल राजनीतिज्ञ ही न थ, वरन् वे एक उदार शासक भी थे जिन्हे धार्मिक उन्माद छू तक न गया था।

औरङ्गजेब दक्षिण में

उत्तर के उपद्रवो और राजपूतो के विद्रोहो के कारण औरङ्गजेब का दक्षिण की ओर बढने का मौका ही न मिल सका। लेकिन १६८१ म राजपूत युद्ध के समाप्त हो जाने पर औरंगजेब ने निश्चय किया कि वह स्वय दक्षिण जाकर बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यो तथा मराठो की शक्ति को मटिया-मेट करके ही वापस लौटेगा। परन्तु दक्षिण में जाकर वह इस प्रकार युद्धो म फस गया कि लौट कर वह फिर उत्तरी-भारत न आ सका। फलत उसके शासन-काल का उत्तरार्द्ध दक्षिण में ही व्यतीत हुआ और वहीं सन् १७०७ में उसकी मृत्यु भी हुई।

औरगजब न दक्षिण के सुल्तानो की तरह मराठो को नष्ट करने का भी निश्चय किया। शम्भा जी को नष्ट करना औरगजेब के लिए कठिन न पडा। शम्भा जी अपने पिता शिवाजी की तरह न तो चतुर था और न योद्धा ही। वह एक विलासी व्यक्ति था। कवि कुलेश नाम का एक निकम्मा व्यक्ति उसका मित्र और सलाहकार था। उसी के साथ रह कर वह सगमेश्वर के किले म भोग विलास में अपना समय गवाया करता था। अत मौका पाकर सन् १६८९ में औरगजेब के एक सेनापति मुकर्रब खा ने अचानक आक्रमण करके सगमेश्वर में उसे घेर कर कैद कर लिया। औरगजेब ने तब शम्भाजी को कत्ल करवा दिया। कुछ समय बाद मुगलो ने रायगढ पर अधिकार करके शम्भाजी के पुत्र साहू को भी गिरफ्तार कर लिया।

मराठों का स्वतन्त्रता के लिए युद्ध

शम्भाजी की हत्या और रायगढ के पतन से मराठे मुगलों क और भी प्रबल शत्रु हो गये। औरगजेब ने उन्हे एक बार हरा जरूर दिया था, लेकिन उनका देश-प्रेम और साहस पराजित नही हो सका था। इसीलिए अवसर पाने पर मराठो न अपनी स्वतन्त्रता के लिए मुगलो से फिर युद्ध छेड दिया।

राजाराम

जिस समय मुगलो ने रायगढ पर अधिकार किया था, शम्भाजी का एक छोटा भाई राजाराम छिपे तौर पर भाग कर जिंजी (कर्नाटक) चला गया था। वहा जाकर राजाराम ने अपनी शक्ति का पुन सगठन करना शुरू कर दिया। प्रहलाद

राजी को उसने अपना प्रधान मंत्री या प्रतिनिधि बनाया। स प्रतिनिधि ने बड़ी योग्यता से राज्य का काम सम्पन्न किया। सरी तरफ महाराष्ट्र में मराठा सेनापति सन्ताजी घोरपाडे और धनाजी जादव अपने आक्रमणों द्वारा मुगलों को तंग करने गे। इस तरह मराठों ने मुगलों के विरुद्ध महाराष्ट्र में एक तरह से जन-युद्ध सा छेड़ दिया। कहते हैं, इन आक्रमणों में मराठों ने बादशाह के खेमे तक को न छोड़ा। फलतः मराठों के आक्रमणों से मुगल बहुत परेशान और क्षुब्ध हो उठे।

औरंगजेब ने राजाराम को नष्ट करने के लिए जिंजी पर आक्रमण करने के लिए सन् १६९१ में जुल्फिकार खां को भेजा। बड़ी कठिनाई से आठ वर्ष बाद जुल्फिकार खां जिंजी धिकार कर पाया। लेकिन राजाराम इस बार भी भाग त रूप से सतारा चला गया। औरंगजेब की सेना ने तब ा पर भी आक्रमण किया। मराठों ने बड़ी मजबूती के साथ का मुकाबला किया। इसी बीच सिंहगढ़ में राजाराम की हो गयी, और सतारा में मराठों ने आत्मसमर्पण कर (१६९९ ई०)।

ताराबाई

औरंगजेब ने समझा था कि राजाराम के मरने पर मराठों की शक्ति टूट जायगी, लेकिन उसकी यह आशा पूरी नहीं हो सकी। राजाराम की वीर और सुयोग्य पत्नी ताराबाई ने अपने छोटे से बच्चे को राजा बनाकर महाराष्ट्र का स्वातंत्र्य संग्राम चालू रखा। उसने दक्षिण के मुगल सूबों पर भी आक्रमण

कराये, जिससे मुगलो की परेशानी की सीमा न रही। [illegible]
ने भी पूरी ताकत लगा कर मराठो का दवाने का [illegible]
पर पूरे साढे-पाच वर्ष इसी कार्य म लगे रहने पर भी
मराठो की शक्ति को न तोड सका। अन्त मे औरंगजेब
विश्वास हो गया कि उसका सारा परिश्रम व्यर्थ गया है
मराठो से वह पार नही पा सकता। आखिर मे थक कर
निराश होकर औरगजेब अहमदनगर लौट आया जहा
सन् १७०७ मे उसकी मृत्यु भी हो गयी। इस
औरगजेब की शक्ति को तोड कर आखिर मराठो ने [illegible]
ने फिर से अपनी प्रभुता कायम कर ली। औरगजेब के [illegible]
उसके निर्बल उत्तराधिकारी मराठो का कुछ भी न बिगाड सके

औरङ्गजेब और अंग्रेज व्यापारी

जहागीर के शासन-काल से ही अंग्रेज भारत मे व्यापार करने लग थे। उन्होने आगरा, सूरत, अहमदाबाद, भडौच और ममलीपट्टम आदि में अपनी कोठिया बना ली थी। सन् १६३९ मे अग्रेजो ने मद्रास मे भी एक कोठी और किला बना लिया था। यह किला बाद में सेट जार्ज फोर्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शाहजहा की आज्ञा से हुगली, पटना और कासिम बाजार में भी अग्रेजो ने कोठिया बनाली थी। सन् १६६८ मे बम्बई पर भी अग्रेजी ईस्ट-इडिया कम्पनी का अधिकार हो गया था।

अग्रेजो के मन में अब सारे भारत पर अधिकार कर लेने की कल्पना भी पैदा हो चुकी थी। इसी कारण औरंगजेब के, समय में उन्होने अपना अधिकार बढाने के लिए बल [illegible]

प्रयोग किया। बंगाल के सूबेदार शाइस्ता खां ने जब ईस्ट-इंडिया कम्पनी के व्यापार पर कर लगाये तो अंग्रेजों ने कर देने से इनकार कर दिया और मुगलों से युद्ध छेड़ कर हुगली नगर को घेर लिया। किन्तु मुगल सूबेदार ने उन्हें हुगली से बाहर भगाया। अपने को कमजोर पाकर जौब चारनौक ने तुरन्त मुगलों से संधि कर ली और सुतनती गांव में जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली (१६८७)।

किन्तु दूसरे साल अंग्रेजों ने फिर चटगांव पर आक्रमण कर दिया। पर इस बार भी वे असफल रहे और उन्हें सुतनती गांव छोड़ कर बंगाल चला आना पड़ा।

दूसरी तरफ बम्बई में भी अंग्रेजों ने सशस्त्र उपद्रव किया। सन् १६८८ में अंग्रेजों ने बम्बई को घेर लिया और मुगलों के अनेक जहाज पकड़ लिये। किन्तु अंग्रेजों को यहां पर भी मुंह की खानी पड़ी। अन्त में अंग्रेजों ने औरंगजेब से क्षमा मांग ली और मुगल बादशाह ने भी उन्हें फिर व्यापार करने की आज्ञा दे दी। इस सुलह के हो जाने पर जौब-चारनौक भी बंगाल लौट आया और उसने सुतनती गांव में एक फैक्टरी स्थापित की। कुछ वर्ष बाद अंग्रेजों को सुतनती, कालीकत्ता और गोविन्दपुर के गांवों की जमींदारी भी प्राप्त हुई। इन तीनों गांवों को मिला कर बाद में अंग्रेजों ने कलकत्ता नगर बसाया जो उनके राज्य की बहुत समय तक राजधानी रही।

औरङ्गजेब का चरित्र

औरंगजेब का निजी जीवन बहुत ही सादा और धर्म-पर

पूर्ण था। वह भोग-विलास से दूर रहता था। खाने-पीने में भी वह बहुत सयम रखता था। नशे की चीजो का इस्तेमाल नही करता था। उसका पहिनावा भी साधारण था। वह कुरान के नियमो का पूरी तरह से पालन करता था। लडाई के मैदान में भी वह नमाज पढने को समय निकाल लेता था। उसकी स्मरण शक्ति बहुत प्रबल थी। कुरान उसे कठस्थ था। उसकी लिखावट भी बहुत सुन्दर थी। व्यक्तिगत रूप से वह ऊचे चरित्र का मनुष्य था। उसके सामने न कोई किसी की निन्दा कर सकता था और न परिहास। वह राजकीय कर्त्तव्यो के प्रति बहुत जागरूक रहता था। वह स्वय अर्जियां सुनता और अपने हाथ से उन पर आज्ञाए लिखता था। धीरता और वीरता उसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। वह कुशल सेनापति और राजनीतिज्ञ था। इस कारण उसके प्रबल शत्रु भी उससे पार न पा सकते थे।

किन्तु इन व्यक्तिगत गुणो के होते हुए भी शासक के रूप में वह सफल न हो सका। इसका कारण यही था कि वह सारी प्रजा को एक न समझ सका। इस्लाम का अध-भक्त होने से उसने अन्य धर्मों के प्रति जो अनुदारता का बर्ताव किया, उस कारण हिन्दू-जनता, राजपूत-राजे, सिख, मराठे आदि असतुष्ट होकर साम्राज्य के शत्रु बन गये। धर्मांध होने के अलावा वह बडा अविश्वासी आदमी भी था। वह दूसरो का बहुत कम विश्वास करता था। इसलिए राज्य का सारा काम वह स्वय देखता था। उस की आज्ञा के बिना कोई अधिकारी कुछ करनेका साहस नही कर सकता था। परिणाम यह हुआ कि सूबेदार और राज-कर्मचारी

अकर्मण्य हो गये और उनमें स्वय अपनी सूझ और जिम्मेदारी से कार्य करने की शक्ति बाकी न रही। इस प्रकार औरगजेब ने सब काम अपने ही हाथ में लेकर राज्य की पूरी व्यवस्था ही बिगाड दी। इसी तरह उसने मेल की जगह बल की नीति को अपनाकर राजपूत राजाओ को भी विद्रोही बना दिया। फलत जो राजपूत अब तक मुगल साम्राज्य के मित्र रहे थे, शत्रु हो गये। राजपूतों की तरह मराठो के प्रति भी उसने दूरदर्शिता से काम नही लिया। वह उनके विनाश पर तुल गया और मरते दम तक उनसे लडता ही रहा। परिणामत मराठे भी मुगलो के पक्के शत्रु बन गये। औरगजेब के निरतर युद्धो ने मुगल-राज्य की आर्थिक दशा को भी बिगाड दिया। उसके उत्तराधिकारी भी निर्बल निकले और स्थिति को सभाल न सके। ऐसी हालत मे यदि औरगजेब के मरते ही मुगल-राज्यके टुकडे-टुकडे हो गये तो आश्चर्य की बात ही क्या है ?

अभ्यास के लिए प्रश्न

१– शिवाजी कौन थे ? बीजापुर के साथ उनका कैसा सबध था ?
२– औरगजेब ने शिवाजी को दबाने के लिए क्या क्या प्रयत्न किय ?
३– शिवाजी का शासन प्रबन्ध कैसा था ?
४– बीजापुर और गोलकुण्डा का पतन कब और कैसे हुआ ?
५– मराठो ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए क्या प्रयत्न किये ?
६– औरगजेब किस प्रकार का व्यक्ति था ? शासन करने मे वह सफल क्यो नही हो सका ?

अध्याय २०

औरंगजेब के उत्तराधिकारी

मुगल साम्राज्य का पतन

बहादुरशाह (१७०७–१७१२)–औरंगजेब की दमन-नीति और अत्याचारों के कारण मुगल साम्राज्य की विशाल इमारत हिल गई थी। चारों ओर अशांति और उपद्रव की काली घटाएं घिरने लगी थी। इन घटाओं ने धीरे-धीरे विकराल रूप धारण करना शुरू कर दिया था। राजपूत, मराठे और सिख, मुगल साम्राज्य पर कुठाराघात करने के लिए मौका देख रहे थे। निःसन्देह औरंगजेब के मरने पर मुगल-राज्य की नौका राजनैतिक तूफान के भंवर में फंसकर डगमगाने लगी थी। इस अवसर पर एक चतुर नाविक की आवश्यकता थी, जो डगमगाती मुगल-नौका को पार लगा देता।

औरंगजेब के चार लड़के थे। एक लड़का अकबर विद्रोही बनकर पहले ही फारस भाग गया था। अतः अब तीन लड़के रह गये थे–मुअज्जम, आजम और कामबख्स। मुअज्जम (शाह-आलम) सबसे बड़ा था। औरंगजेब की मृत्यु के समय मुअज्जम काबुल में था और शेष दो लड़के दक्षिण में थे।

कहते हैं औरंगजेब मरते समय यह लिख कर छोड़ गया था कि उसके तीनों बेटे हिन्दुस्तान का साम्राज्य आपस में बांट लेवें। शायद अपने भाइयों और बाप के साथ राज्य प्राप्ति के

लिए औरंगजेब ने जो घृणित व्यवहार किया था, उसकी दु:ख-दायी याद से ही वह ऐसी वसीयतकर गया हो। लेकिन कुछ विद्वान यह समझते हैं कि वह कोई इस तरह की वसीयत न छोड़ गया था। जो भी हो, शाहजादा मुअज्जम बटवारे के लिए भी तैयार था। वह एक दयालु प्रकृति का व्यक्ति था और भाइयों का खून बहाना पसन्द न करता था। उसने बहादुर-शाह नाम से अपना राज्याभिषेक किया और तेजी के साथ काबुल से आकर आगरा और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। आजम और कामबख्स से मुअज्जम का बादशाह बनना न सहा जा सका। आजम तुरन्त दक्षिण से फौज लेकर आगरे के लिए चल पड़ा। वह बहादुरशाह से सिंहासन छीनने के लिए बहुत उतावला हो रहा था। बहादुरशाह यद्यपि भाई से लड़ना न चाहता था, पर विना लड़े काम न चल सकता था। अत बहादुरशाह ने सेना लेकर आगरे के पास जाजऊ में आजम से युद्ध किया। आजम हारा और मारा गया।

आजम तो गया, लेकिन कामबख्स अभी दक्षिण में मौजूद था। उसने भी बहादुरशाह को बादशाह मानने से इन्कार कर दिया था और बीजापुर व गोलकुण्डा का स्वतंत्र बादशाह बन गया था। अत. आजम से निपट कर बहादुरशाह फौज लेकर दक्षिण की ओर बढ़ा। कामबख्स ने बड़े घमंड के साथ हैदराबाद के पास बहादुरशाह का सामना किया। लेकिन वह भी हारा और घायल होने से पकड़ लिया गया। सहृदय बहादुरशाह ने कामबख्स का बहुत इलाज कराया; लेकिन वह बच न सका और उसकी मृत्यु हो गयी (१७०८)।

बहादुरशाह जब सिंहासन पर बैठा, वह ६४ वर्ष का बूढा हो चुका था। अत एक बुद्धिमान, उदार और शिक्षित शासक होने पर भी, साम्राज्य को पतन से बचाने की शक्ति उस में नही रह गयी थी। फिर वह अधिक दिन जीवित भी न रहने पाया।

बहादुरशाह की मेल की नीति

मराठे, राजपूत, सिख और जाट औरंगजेब की दमन नीति के कारण विद्रोही बने हुए थे, इसलिए बहादुरशाह ने इन-लोगों को संतुष्ट करने का यत्न किया।

आजम ने दक्षिण से आगरे जाते समय साहू को रिहा कर दिया था और उसे चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने की स्वीकृति भी दे दी थी। बहादुरशाह ने भी साहू को प्रसन्न करने के लिए उसकी स्वतंत्रता स्वीकार कर ली।

बहादुरशाह सबसे अधिक राजपूतो से मेल करने को इच्छुक और व्यग्र था। वह जानता था कि डगमगाती मुगल नौका को डूबने से यदि कोई बचाने में मदद दे सकता है तो वे राजपूत ही है। उस के महान् पूर्वज अकबर ने राजपूतों की मदद से ही तो मुगल साम्राज्य का विशाल महल खडा किया था। अत दक्षिण से लौटकर बहादुरशाह ने उदयपुर और जोधपुर के राज्यो की स्वतंत्रता स्वीकार करके उन से सुलह कर ली। जयपुर के राजा के साथ भी संधि कर ली गयी।

जाट भी मुगलो के कट्टर शत्रु थे। औरंगजेब के मरने पर चूड़ामन जाट भी बहुत प्रबल हो गया था। जाजऊ के युद्ध

के समय उस ने मुगलों के खेमों को खूब लूटा था। लेकिन बहादुरशाह के मेल की नीति से उसने भी अन्त में मुगल दरबार में नौकरी स्वीकार कर ली।

बन्दा का विद्रोह

बहादुरशाह ने गुरु गोविन्द सिंह से भी मेल कर लिया था। अत जब बहादुरशाह कामबख्स से लड़ने के लिए दक्षिण गया तो सिख गुरु ने भी उस का साथ दिया था। किन्तु यह मेल स्थायी न हो सका। औरंगजेब के अत्याचारों से सिख मुगलों से बहुत रुष्ट हो चुके थे। वे प्रतिहिंसा में जल रहे थे। बदला लेने को उनका हृदय बेचैन हो रहा था। अतः गुरु के मरने के बाद सिखों के नेता बन्दा ने मुगलों के विरुद्ध फिर स्वतन्त्रता का युद्ध छेड़ दिया।

बन्दा युवावस्था से ही एक वैरागी साधु था। दक्षिण में जब गुरु गोविन्द सिंह की हत्या हुई, उसी समय बन्दा की गुरु से भेंट हुई थी। मरते समय गुरु ने इस बन्दा वैरागी को सिखों का नेता बना दिया और अपनी एक तलवार व पांच तीर देकर उसे पंजाब जाने का आदेश दिया था। बन्दा जब पंजाब पहुंचा, बहादुरशाह राजपूतों के साथ उलझा हुआ था। उसने मौका देखकर पंजाब में सिखों की स्वतन्त्रता का युद्ध छेड़ दिया। उसने सिखों की एक भारी सेना लेकर सरहिन्द पर आक्रमण किया। वहां के सूबेदार वजीर खां को मारकर

था। अपने बाप का बदला लेने और दिल्ली पर अधिकार क
के लिए वह छटपटा रहा था। किन्तु वह स्वय इतना वे
और साहसी नही था कि दिल्ली पर आक्रमण कर सकत
इसलिए उसने खुशामदे करके पटना के हाकिम सैय्यद हु
अली को अपनी तरफ मिलाया। हुसैनअली के कहने
उसके भाई इलाहाबाद के हाकिम अब्दुल्ला ने भी फर्रु
सियर का पक्ष ग्रहण किया। सैय्यद भाइयों की दे
देखी और भी कई एक सरदार फर्रुखसियर की तरफ
गये। इन सब की मदद पाकर तब वह दिल्ली की ओर बढ़
जहांदरशाह और जुल्फिकार खा ने आगरे के पास फर्रुखसि
का सामना किया। विलासी जहांदरशाह को हारते
न लगी और वह भागकर दिल्ली के किले में जा छिपा।
किन्तु उसके दिन पूरे हो चुके थे। अत वह और उसका म
जुल्फिकार खा दोनो कैद हुए और मार डाले गये।

फर्रुखसियर (१७१३–१७१९)

फर्रुखसियर निर्बल और अयोग्य व्यक्ति निकला
वह डरपोक और कृतघ्न भी था। सैय्यद भाइयो की मदद से
वह बादशाह बना था, इसलिये उसने अब्दुल्ला को वजीर और
हुसैन अली को मीर बख्शी बनाया। किन्तु उनके बढ़ते
हुए प्रभाव को देखकर कृतघ्न फर्रुखसियर मन–ही–मन जलने
लगा। वह किसी तरह उनको खत्म करके स्वच्छन्द होकर
शासन करना चाहता था।

सैय्यद भाइयों की इच्छा

मुगल दरबार में इस समय दो दल पैदा हो गये थ। एक